जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

ज्वालामुखी

सितंबर 1981

द्वितीय अंक

सम्पादक : योशिआकि सुजुकि

Scanned with CamScanner

हिन्दी साहित्य के भण्डार की समृद्धि हेतु

हमारे प्रकाशित ↓

शोध-प्रबन्ध

● सूरदास और संतकवि नटनगोपाल नायकी स्वामिगल का तुलनात्मक अध्ययन	डा० के० आर० विट्ठलदास	60·00
● चैतन्य सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य	डा० नरेशचन्द्र वंसल	75·00
● हिन्दी-चित्रपट का गीति-साहित्य	डा० ओंकारप्रसाद माहेश्वरी	32·00
● माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डा० कृष्णदेव शर्मा	50·00
● भारतीय उपन्यासो में वर्णन-कला का तुलनात्मक मूल्यांकन	डा० इन्दिरा जोशी	50·00
● हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	डा० शशिभूषण सिंहल	40·00
● प्रसाद-दर्शन	डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना	25·00
● वृन्द-ग्रन्थावली	डा० जनार्दनराव चेलेर	40·00
● वृन्द और उनका साहित्य	,,	40·00
● हिन्दी और तेलुगु वैष्णव-भक्ति साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन	डा० के० रामनाथन्	40·00
● रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता	डा० रमेशकुमार शर्मा	30·00
● कृष्णभक्ति साहित्य में रीतिकाव्य परम्परा	डा० राजकुमारी मित्तल	30·00
● ब्रज और बुन्देली लोकगीतो में कृष्णकथा	डा० शालिग्राम गुप्त	40·00
● हिन्दी और कन्नड में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन	डा० हिरण्मय	40·00
● नाथपंथ और निर्गुण सन्तकाव्य	डा० कोमलसिंह सोलंकी	40·00
● सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	विशम्भरनाथ उपाध्याय	40·00
● आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण-काव्य	डा० मलिक मोहम्मद	50·00
● कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	30·00
● हिन्दी में प्रत्यय विचार	डा० मुरारीलाल उप्रेतिः	40·00
● हिन्दी समास रचना का अध्ययन	डा० रमेशचन्द्र जैन	20·00
● आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	डा० शम्भूनाथ पांडेय	40.00
● ब्रज साहित्य का मूल्यांकन	डा० भगवान सहाय पचौरी	40.00
● सूफी काव्य विमर्श	डा० श्याममनोहर पांडेय	20.00
● हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती	हिन्दी वाङ्मय सं० डा० नगेन्द्र	100·00

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (भारत)

VINOD PUSTAK MANDIR, AGRA

Scanned with CamScanner

जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

ज्वालामुखी

सम्पादक

योशिआकि सुज़ुकि

तोक्यो, जापान

Scanned with CamScanner

प्रकाशक :

योशिआकि सुजुकि

5-9 मात्सुयामा 3 च्योमे, कियोसे-शि,

तोक्यो, जापान

YOSHIAKI SUZUKI

5-9 Matsuyama 3 Chome, Kiyose-shi,

TOKYO, JAPAN

सहयोग राशि :

10 रुपए (भारत में)

1,000 येन (जापान में)

मुद्रक :

विनोद पुस्तक मन्दिर

डॉ० रांगेय राघव मार्ग

आगरा, भारत

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

			पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	योसिआकि सुजुकि	1
2.	भारतीय फिल्में : एक जापानी की नज़र में	तामाकि मात्सुओका	3
3.	आधुनिक जापानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ (1)	शिगेओ आराकि	14
4.	नया गाँव, नया लेखक : मिथिलेश्वर की कहानियाँ	आकिरा ताकाहाशि	26
5.	कहानी : एक रिक्शावाले की कहानी	तोमिओ मिज़ोकामि	34
6.	मन्नू भंडारी "आपकी बंटी"	मिकि कावामुरा	41
7.	नागार्जुन कृत "बाबा बटेसरनाथ" पढ़कर	एदेरा कोदामा	44
8.	"बाबा बटेसरनाथ" एक विवेचन	यूइचिरो मिकि	47
9.	परिशिष्ट		
	(1) गत वर्ष जापान में प्रकाशित भारतीय साहित्य एवं भारतीय भाषा सम्बन्धी निबन्धों की सूची सन् 1980 से जून 1981 तक		52
	(2) इस अंक के लेखक एवं लेखिकाएँ		53
	(3) विशेष सहयोगी		53

Scanned with CamScanner

सम्पादकीय

गत वर्ष जापानी लोगों के विचार एवं संस्कृति को हिन्दी में व्यक्त करने के उद्देश्य से मैंने इस पत्रिका का प्रकाशन किया था और मैंने इस पत्रिका को विश्व के अनेक हिन्दी प्रेमियों को भेंट किया। उसकी प्रतिक्रियाएँ मुझे तुरन्त ही मिलीं। इन प्रतिक्रियाओं से मालूम होता है कि इस पत्रिका ने भारत के ही नहीं, बल्कि विश्व के हिन्दी प्रेमियों को भी काफी प्रभावित किया है परन्तु जापानी हिन्दी प्रेमियों को किस हद तक प्रभावित किया है, यह अभी ठीक से नहीं कहा जा सकता।

अब पिछले अंक की प्रतिक्रियाओं के आधार पर पिछले अंक के निबन्धों के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। श्री तोमिओ मिज़ोकामि ने एक विदेशी की दृष्टि से भारत की भाषा-समस्या पर कुछ टिप्पणी करके भारत के लोगों को प्रभावित करने के साथ ही विश्व के हिन्दी प्रेमियों का समर्थन भी प्राप्त किया। सुश्री ताकाको सुगानुमा का निबन्ध "क्या रामचरितमानस जन हितों के लिए लिखा गया था ?" काफी विवादग्रस्त विषय रहा। कुछ लोगों का मत था कि यह लेख हिन्दू धर्म का खण्डन करता है और कुछ लोगों ने इस लेख की प्रशंसा की। वास्तव में हम किसी भी देश की संस्कृति पर विचार करते समय जापानी दृष्टिकोण ही अपनाएँगे और भारतीय पाठक भी उसे भारतीय दृष्टिकोण से देखेंगे। दृष्टिकोण की भिन्नता से आपस में गलतफहमी व भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना भी होती है। लेकिन पाठकों की प्रतिक्रियाएँ इन गलतफहमी व भ्रम को मिटाने में मदद करती हैं अर्थात् विचारों का आदान-प्रदान गलतफहमी, भ्रम को ही दूर नहीं करता, बल्कि दूसरे देश की संस्कृति को गहराई से समझने में भी सहायता देता है। इसलिए मैं पाठकों की प्रतिक्रियाओं का सदा स्वागत करता हूँ और पिछले अंक के निबन्धों के लिए जिन लोगों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ भेजी हैं उन लोगों के प्रति मैं सभी लेखकों की ओर से धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

अब मैं पाठकों से जापान में भारत सम्बन्धी रुचि के विषय में कुछ कहना चाहूँगा। कुछ वर्षों से हम महसूस करते हैं कि जापान में भारत सम्बन्धी रुचि में परिवर्तन आया है। भारत की ऐतिहासिक खण्डहरों को देखने की रुचि से कहीं अधिक भारतीय लोगों की जिन्दगी को जानने की रुचि में वृद्धि हुई है अर्थात् भारत की वास्तविकता जानने की कोशिश करने वालों की संख्या बढ़ रही है, चाहे साहित्य के माध्यम से हो, चाहे कला के माध्यम से हो, या यात्रा के माध्यम से हो। उदाहरण के लिए, इस वर्ष जापान में पहली बार हरिजन-समस्या को लेकर हरिजनों की परिस्थिति की

Scanned with CamScanner

परिचयात्मक पुस्तक प्रकाशित की गई है और साहित्य के द्वारा भी मराठी साहित्य के दलित साहित्य का परिचय हुआ है। इस प्रकार जापानी लोगों की रुचि भारत के लोगों की जिन्दगी अर्थात् भारत की वास्तविकता के निकट तक आ रही है। भारत की वास्तविकताओं के बारे में चर्चा करने के वक्त हमें हमेशा सुनने को मिलता है कि विदेशी लोग भारत की वास्तविकताओं के एक अंश को ही देखकर भारत को समझने की कोशिश करते हैं, परन्तु हम मानते हैं कि वास्तविकता तो आखिर वास्तविकता ही है। भारत के अधिकांश लोग समझते हैं कि जापान एक विकसित देश है और जापानी सब सम्पन्न होते हैं, परन्तु जापान में भी गरीबी, बेरोजगारी, जाति-प्रथा आदि से सम्बन्धित कुछेक-अपनी समस्याएँ हैं और हम उन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करेंगे। क्योंकि यह भी एक तथ्य है। इस प्रकार हम मानते हैं कि अपने देश की वास्तविकता और समस्याओं को स्वीकारते हुए दूसरे देशों की वास्तविकता आदि को जानने का प्रयास करना ही उचित होगा। और इस प्रकार के प्रयासों से हम लोगों के मन में सच्ची सद्भावना उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए हम जापानी लोगों की इस बढ़ती रुचि का स्वागत करते हैं।

अंत में इस अंक के निबन्धों पर कुछ कहना उचित होगा। इस अंक में हिन्दी फिल्म प्रेमी एक जापानी महिला सुश्री तामाकि मात्सुओका ने भारतीय फिल्म सम्बन्धी एक निबन्ध प्रस्तुत किया है। वे जापान में हिन्दी फिल्मों का परिचय कराती हैं और उनका सपना है कि जापानी लोगों को अच्छी हिन्दी फिल्म दिखाई जायँ। पाठकों को उनका निबन्ध पढ़कर आश्चर्य होगा कि जापान में भी हिन्दी फिल्म प्रेमी हैं। श्री तोमिओ मिज़ोकामि ने इस अंक के लिए एक हिन्दी लघु कहानी दी है। जापान के बी० ए० हिन्दी के छात्र-छात्राओं के निबन्ध भी इस अंक में हैं और श्री शिगेओ आराकि ने अपनी दृष्टि से "आधुनिक जापानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ" शीर्षक निबन्ध लिखा है। हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले श्री आकिरा ताकाहाशि ने हिन्दी के नये साहित्यकार मिथिलेश्वर की कहानियों की समीक्षा की है। इस अंक के सभी लेखक-लेखिका पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत एवं प्रतीक्षा करते हैं।

15-8-1981

स्वतन्त्रता दिवस और रक्षाबन्धन का दिन,

नई दिल्ली में

सम्पादक

योशिआकि सुजुकि

Scanned with CamScanner

भारतीय फिल्में : एक जापानी की नज़र में

तामाकि मात्सुओका

1. भारतीय फिल्में और मैं

सन् 1971 की बात है, उन दिनों तोक्यो रहनेवाले भारतीयों के लिए साल में एक बार बड़े हॉल में हिन्दी फिल्म दिखाई जाती थी। उस अवसर पर हिन्दी पढ़नेवाले जापानी भी शामिल हो सकते थे।

उस समय मैं तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में M. A. कर रही थी। उससे पहले मैंने चार साल हिन्दी पढ़कर B. A. पास किया, लेकिन हिन्दी में बातें करना मुझे बिल्कुल नहीं आता था। क्योंकि जापान के विश्व-विद्यालयों में हिन्दी पढ़ना सिखाते हैं, किताबें बहुत पढ़ाते हैं, पर बोलने-सुनने की क्षमता बढ़ाना विद्यार्थियों को अपने-आप करना पड़ता है। लेकिन खुद पढ़कर आगे बढ़ना बहुत मुश्किल है। उस समय मेरी हिन्दी बोलने-सुनने की क्षमता कम थी। इसलिए फिल्म देखने से पहले मुझे शक था कि फिल्म के डायलाग मेरी समझ में आएँगे या नहीं।

उसी समय की फिल्म थी "खिलौना" और वह मेरे लिए पहली हिन्दी फिल्म थी। मेरे शक के बावजूद मैं उस फिल्म को न केवल समझ ही पायी, बल्कि मैंने उसका मज़ा भी लिया। यह मेरे लिए एक आश्चर्य-भरी घटना थी। अब तक मैं केवल किताबी हिन्दी पढ़ रही थी, और उस समय से जीवित हिन्दी पढ़ने लगी।

सन् 1975 में मैं पहली बार भारत गई। तीन सप्ताह की यात्रा थी और उसके बीच मैंने सात फिल्में देखीं। "जागते रहो", "खामोशी", "जंजीर", "फूल और पत्थर", "हाथी मेरे साथी", "गीत गाता चल" और "शोले"। सब फिल्में मुझे बहुत अच्छी लगीं। भारतीय फिल्मों के प्रति दीवानगी तभी से शुरू हुई।

जापान में भारतीय फिल्में देखने का मौका बहुत कम है—न होने के बराबर है। आज तक केवल सत्यजीत राय ही की कई फिल्में प्रदर्शित की गई हैं। उनमें से हैं—"पथेर पंचाली", "अपराजित", "ओपूर संसार", "महानगर" "चारुलता", "आशानी संकेत", "जन अरण्य", "शतरंज के खिलाड़ी", "सीमाबद्ध" इत्यादि। ऐसी फिल्में आर्ट्स फिल्में हैं, इसलिए आम लोगों में लोकप्रिय नहीं हो सकीं। जापान में उनके अलावा अन्य भारतीय फिल्में कुछ भी नहीं देख सकते। अगर कोई अन्य भारतीय फिल्में देखना चाहें तो उन्हें भारत जाना पड़ता है।

सो मैं हर साल भारतीय फिल्में देखने के लिए भारत जाती रहती हूँ। अब तक छः बार जा चुकी हूँ और उन यात्राओं में लगभग सौ हिन्दी फिल्में, चार-पाँच तमिल फिल्में, दो-तीन तेलगू, मलयालम, बंगाली फिल्में भी देखी हैं। केवल फिल्म ही नहीं, अमिताभ बच्चन, राज कपूर, प्रेम चोपड़ा, पण्डित नरेन्द्र शर्मा, डॉ० राही मासूम रज़ा इत्यादि से मिलकर फिल्म जगत का दर्शन भी थोड़ा-सा किया है।

Scanned with CamScanner

ऐसे अनुभव पर आधारित लेख जापानी पत्रिकाओं में लिखती हूँ और जापान के बाज़ार में भारतीय फिल्में लाने के लिए कोशिश करती हूँ।

यह निबन्ध मेरे जापानी भाषा के लेखों पर आधारित है। आशा है, यह निबन्ध पढ़कर भारतीय लोगों को भी पता चले कि जापान में भी भारतीय फिल्म-प्रेमी हैं।

2. हिन्दी फिल्मों की दो धाराएँ

आजकल की हिन्दी फिल्मों की मुख्य दो धाराएँ हैं—मल्टि-स्टार-सिस्टेम की फिल्में और स्मॉल-बजट की फिल्में। पहली को 'मल्टि-स्टार फिल्में' और दूसरी को 'स्मॉलीज़ फिल्में' के नाम रखकर इन दो धाराओं के बारे में कुछ टिप्पणी करना चाहती हूँ।

(1) मल्टि-स्टार फिल्में

इस धारा का आरम्भ है "शोले"। "शोले" से पहले भी मल्टि-स्टार जैसी फिल्में थीं; उदाहरण के लिए—"संगम", "दाग", "रोटी, कपड़ा और मकान"। लेकिन उन्हें एक धारा नहीं कह सकते। ज्यादातर फिल्में तो एक नायक और एक नायिका की थीं।

"शोले" में तीन नायक और दो नायिकाएँ थे—धर्मेंद्र, अमिताभ बच्चन, संजीव कुमार, हेमा मालिनी और जया भादुड़ी। इसके अतिरिक्त यह फिल्म 70 mm की थी और सलीम-जावेद की पटकथा, राहुलदेव बर्मन का संगीत, आनन्द बख्शी के गीत इत्यादि मनोरंजन के लिए सबसे अच्छे कलाकारों का समूह था। "शोले" सुपरहिट (super-hit) हो गई।

"शोले" हिट होने के कारण मेरी नज़र में ये हैं कि कहानी बहुत चुस्त थी और नायक व खलनायकों के अभिनय काफ़ी प्रभावशाली थे। अगर कहानी अच्छी हो तो कोई भी अच्छा काम कर सकता है और अच्छी कहानी को यदि अच्छा अभिनय भी मिल जाते तो फिल्म और बढ़िया हो जाती है। "शोले" के अभिनय के बारे में हमें याद है—संजीव कुमार की गम्भीरता, हेमा मालिनी की बक-बक, अमिताभ बच्चन का जोश, धर्मेंद्र का हास्य रूप और अमजद खां का पागलपन। ऐसी कुशलताओं से मिलकर "शोले" एक बहुत बढ़िया और मनोरंजक फिल्म बन गई है।

"शोले" हिट होने के बाद निर्माता लोगों ने सोचा कि मल्टि-स्टार फिल्म हो तो ज़रूर हिट हो जाएगी। उसके बाद मल्टि-स्टार फिल्में लगातार बनाई जा रही हैं। "कभी-कभी", "धर्मवीर", "अमर अकबर अन्थोनी", "काला पत्थर", "द बर्निंग ट्रेन", "शान" आदि-आदि। लेकिन "शोले" जैसी कोई भी धाक नहीं जमा सकी। शायद मामूली फिल्मों की तुलना में बॉक्स ऑफिस में सफल रही हों, फिर भी "शोले" से आगे नहीं बढ़ सकीं।

उदाहरण के लिए लीजिए "कभी-कभी"। इसमें तीन-तीन नायक-नायिकाएँ थे। इन छः सितारों को बराबर पर्दे पर दिखाने के लिए कहानीकार ने काफ़ी कोशिश की। लेकिन वह बेकार निकली। कहानी भूल-भुलैयों की तरह उलझी हुई थी। ख़ासकर प्रेमी-प्रेमिका और माँ-बच्चे के सम्बन्ध एकदम उलटे-पलटे थे। समझ में आसानी से नहीं आते थे, और नायक-नायिकाओं के अभिनय भी साधारण थे, दर्शकों को कुछ भी प्रभावित नहीं कर सके थे। फिर भी मुकेश के गाने अच्छे होने के कारण "कभी-कभी" हिट हो गई। उससे प्रेरित होकर निर्माता-निर्देशक मल्टि-स्टार फिल्में और ज़ोर से बनाने लगे। खासकर मनमोहन देसाई ने "धर्मवीर", "अमर अकबर अन्थोनी", "चाचा-भतीजा", "परवरिश" इत्यादि कई मल्टि-स्टार फिल्में बनाईं। लेकिन उन फिल्मों में कहाँ है चुस्त कहानी ? उनमें सिर्फ बड़े-बड़े सितारों के चेहरे ही चेहरे थे।

Scanned with CamScanner

इसी तरह इस साल भी "शान" या "क्रांति" तक कितनी मल्टि-स्टार फिल्में बनाई गई हैं—ठीक से नहीं गिन सकते। अगर गिनने की कोशिश करें तो शायद चालीस-पचास हो जाएगी और अब भी पाँच-दस मल्टि-स्टार फिल्में बनाई जा रही हैं।

लेकिन ज़रा सोचिए, आपको ऐसी फिल्मों में से कितनी फिल्में अच्छी तरह से याद हैं? मेरी नज़र में "शोले" के अलावा सब एक जैसी लगती हैं। अभिनय करने वालों के चेहरे भी एक ही हैं—अमिताभ बच्चन, शशि कपूर, धर्मेंद्र, विनोद खन्ना, शत्रुघ्न सिन्हा, हेमा मालिनी, राखी, रेखा, ज़ीनतन अमान, परवीन बाबी····। कहानी भी मिलती-जुलती हैं—चोर और इंसपेक्टर साहब की कहानी, दो या तीन भाइयों की कहानी जो बचपन में बिछुड़ गये, या दो दोस्तों की कहानी····। चाहे ट्रेन जल गई हो, चाहे हेलिकॉप्टर उड़ता हो, चाहे कार-चेज़ हो—कहानियों में विशिष्टता बिल्कुल नहीं है।

ऐसी मल्टि-स्टार फिल्मों के मुकाबले जिन फिल्मों में विशिष्टता स्पष्ट है और जो दर्शकों के मन पर प्रभाव भी डालती हैं—वे हैं स्मॉलीज़ फिल्में।

(2) स्मॉलीज़ फिल्में

स्मॉलीज़ फिल्म की परिभाषा करना कठिन है। मेरे ख्याल से स्मॉलीज़ फिल्म की शर्तें कम-से-कम दो हैं। एक तो यह है कि कम खर्च से बनाई जाती हैं, और दूसरी है कि देखने वालों पर कोई-न-कोई प्रभाव डालती हैं। ऐसी फिल्मों को कभी तो समान्तर फिल्म, कभी न्यू-वेव फिल्म, और कभी आर्ट्स फिल्म कहा जाता है।

इस धारा का आरम्भ सन् 1969 में हुआ। उसी साल बासु चटर्जी ने "सारा आकाश" का निर्देशन किया। "सारा आकाश" राजेन्द्र यादव के मशहूर उपन्यास पर आधारित थी, इसलिए उसे 'समान्तर फिल्म' का नाम दिया गया। उसके बाद बासु चटर्जी "रजनीगंधा", "छोटी-सी बात", "चितचोर", "स्वामी" इत्यादि अच्छी फिल्में लगातार बनाते रहे हैं।

लेकिन इस धारा को और तेज़ किया एक निर्देशक ने। उनका नाम है 'श्याम बेनेगल'। श्याम बेनेगल की पहली फीचर फिल्म "अंकुर" सन् 1974 में रिलीज़ हुई और जिसने दर्शकों को झकझोर दिया। "अंकुर" मामूली हिन्दी फिल्मों से बिल्कुल भिन्न थी। उसमें गाना या नाचना कुछ भी नहीं थे। "अंकुर" बासु चटर्जी की "सारा आकाश" या अवतार कौल की "27 डाउन" से भी भिन्न थी। "अंकुर" में सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण ज्यादा था। समाज में अन्याय और असमानता के प्रति क्रोध और विरोध प्रकट करने का तेज़ विचार था।

"अंकुर" के बाद श्याम बेनेगल ने "निशांत", "मन्थन", "भूमिका", "जुनून" इत्यादि फिल्मों का निर्देशन किया। "निशांत" में उन्होंने एक बार फिर गाँव के जमींदार के अन्याय की समस्या को लिया और "मन्थन" में हरिजन समस्या को उठाया।

"भूमिका" और 'जुनून" में विषयों में थोड़ा-सा अन्तर था। श्याम बेनेगल ने उन दो फिल्मों में मनुष्य के मन के भीतरी भाग का चित्रण किया। "भूमिका" की नायिका असली जीवन, असली प्रेम ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अनेक मर्दों के बीच इधर-उधर भटकती थी। निर्देशक ने उसके मन की दर्द-भरी यात्रा को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया। और "जुनून" तो एक प्रेम कहानी कही जा सकती है। लेकिन उस प्रेम कहानी को मामूली हिन्दी फिल्मों के ढंग से नहीं, बल्कि यथार्थ, जीवित मनुष्य की नज़र से निर्देशक ने फिल्माया और सन् 1857 के समय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी बड़ी खूबी से दिखाई।

बासु चटर्जी और श्याम बेनेगल की फिल्मों के अलावा इस धारा की और कई फिल्में हैं। एम० एस० सथ्यू की "गर्म हवा", कान्तिलाल राठौड़ की "परिणय", भीमसेन की "घरौंदा", गोविन्द निहलानी की "आक्रोश" इत्यादि।

Scanned with CamScanner

ऐसी फिल्में दर्शकों के मन पर अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं, और कुछ-न-कुछ दर्शकों के हृदय को छू जाती हैं। ऐसी फिल्में देखकर मन भर आता है, और जीने के लिए साहस मिलता है।

लेकिन बड़े अफसोस की बात है कि ऐसी फिल्में बहुत-बहुत कम हैं। ख़ास तौर से आजकल मल्टि-स्टार फिल्में ज्यादा होने के कारण स्मॉलीज़ फिल्मों पर दबाव पड़ रहा है। ऐसी अच्छी फिल्में कम होने के कारण हिन्दी फिल्मों का कला-स्तर भी धीरे-धीरे नीचे गिर रहा है। अभी हिन्दी फिल्में बड़ी खतरनाक दशा में हैं।

3. हिन्दी फिल्म का पतन

"इण्डिया 1980" देखकर पता चलता है कि हिन्दी फिल्मों की संख्या सन् 1977 के बाद साल-दर-साल कम होती जा रही है। केवल संख्या ही नहीं, उनका कला-स्तर भी धीरे-धीरे नीचे गिर रहा है—यानी अच्छी फिल्में कम होती जा रही हैं।

मेरी नज़र में 'अच्छी फिल्म' दो प्रकार की हैं। एक तो हैं देखनेवालों को प्रभावित करनेवाली आर्ट्स फिल्में, और दूसरी हैं खूब बनाई जाने वाली मनोरंजक फिल्में। पहली फिल्मों में "अंकुर" या "घरौंदा" जैसी फिल्में आती हैं, और दूसरी वाली में हैं "कच्चे धागे", "अभिमान", "शोले" या "खूबसूरत"।

आजकल दोनों प्रकार की फिल्में कम होती जा रही हैं। ऐसी अच्छी फिल्मों की कमी और संख्या में गिरावट को हिन्दी फिल्मों का पतन कहा जा सकता है। लेकिन यह पतन हुआ कैसे? मेरे ख्याल में उसके दो मुख्य कारण हैं।

(1) मल्टि-स्टार फिल्मों का बुरा प्रभाव

जनवरी 1981 का एक दिन, मैं बम्बई के महबूब स्टूडियो में थी। वहाँ फिल्म "दर्द" की शूटिंग हो रही थी। अदालत का दृश्य था और हेमा मालिनी वकील साहिबा के रूप में अभिनय करने वाली थी। हेमा मालिनी का संवाद ज़रा लम्बा था :

"इस मुजरिम को आदमी या इनसान कहकर बुलाना आदमियत के चेहरे पर कालिख मानना होगा। मैं अदालत से दरख्वास्त करती हूँ कि दीपक जैसे सफेद पोश और पढ़े-लिखे मुजरिम को सख्त से सख्त सज़ा दी जाए, ताकि ऐसे गुनाहगारों के अँधेरे दिमाग और दिलों में इनसाफ और भगवान का डर अच्छी तरह से बैठ जाए। That's all, your honour."

कई बार टेस्ट हो रहा था। लगता था कि हेमा मालिनी को संवाद याद करना बहुत मुश्किल पड़ रहा था। पर आखिर उसने याद कर ही लिया और टेक शुरू हुआ। पहले टेक में हेमा ने पूरा संवाद एकदम से बोल दिया। निर्देशक ने बहुत प्रशंसा की, "हेमा जी, बहुत अच्छा! फर्स्ट क्लास!"। और अब दुबारा टेक शुरू हुआ। इस बार बीच में हेमा ने संवाद बोलने में ग़लती की। कैमरा रुक गया। फिर टेक शुरू हुआ, फिर गलती हुई। दो-तीन बार ऐसा हुआ। और आख़िर बड़ी मुश्किल से टेक ओ-के हो गया।

सुना है हेमा मालिनी को उस दिन दो शिफ्ट में काम करना था। सुबह महबूब स्टूडियो में राजेश खन्ना के साथ "दर्द" की शूटिंग और दिन में फिल्मसिटी में धर्मेंद्र के साथ दूसरी फिल्म की शूटिंग। व्यस्त हो तो एक दिन में तीन-चार शिफ्ट भी कर लेती हैं। इतनी व्यस्तता में अभिनय करेंगी तो कैसे? सिर्फ संवाद बोलना और बदन हिलाना ही अभिनय की कला नहीं है। और उसके अतिरिक्त निर्देशन का सवाल भी है। उस समय निर्देशक ने भी

Scanned with CamScanner

कुछ भी शिकायत नहीं की, बल्कि प्रशंसा-ही-प्रशंसा करता रहा और हेमा का कहना सब-कुछ मानता रहा। क्या यह भी एक ढंग का निर्देशन है?

यह मल्टि-स्टार फिल्म के बुरे प्रभाव का एक सबूत है। हिन्दी फिल्मी दुनिया में न जाने कितने सितारे हैं, पर उनमें से नायक-नायिका के रूप में सदा काम करनेवालों की संख्या तीस-चालीस से ज्यादा नहीं होगी। मल्टि-स्टार फिल्मों में कम-से-कम तीन, ज्यादा हो तो सात-आठ नायक-नायिकाएँ काम करते हैं। मल्टि-स्टार फिल्में साल में दस-बारह बनाई जाती हैं, उनके अलावा मामूली फिल्म भी काफ़ी बनाई जाती हैं। तो देखिए, इन तीस-चालीस नायक-नायिकाओं को एक समय में कितनी फिल्मों में काम करना होगा। एक दिन में दो-तीन शिफ्ट में काम करना पड़ता है तो पात्र के बारे में सोच-समझकर अभिनय करना बहुत मुश्किल है। अभिनय से दूर, संवाद याद करना भी असम्भव है। ऐसी फिल्में देखकर दर्शकों को भला कैसे मज़ा आएगा?

मल्टि-स्टार फिल्मों का बुरा प्रभाव एक और भी है। काम करनेवाले सितारे ज्यादा हो जाते हैं तो खर्च भी ज्यादा हो जाता है। पढ़ा है कि अमिताभ की कमाई एक फिल्म में तीस लाख से ज्यादा है। अन्य नायक लगभग दस लाख से बीस लाख तक कमाते हैं और नायिकाएँ ज्यादातर दस लाख के क़रीब कमाती हैं। एक मल्टि-स्टार फिल्म बनाने के लिए केवल नायक-नायिकाओं के खर्च को लेकर ही काफ़ी महँगी पड़ती है।

इस रुपयों के सवाल से निर्माता ही नहीं, बल्कि दर्शक भी जुड़े हैं। पैसे ज्यादा चुकाते हैं तो उसे वापस लेने के लिए फिल्म महँगे दाम से वितरकों को बेचते हैं। तो वितरक भी पैसे वापस लेने के लिए टिकट का दाम बढ़ाते हैं। मैं हर साल बम्बई में फिल्म देखती हूँ। पिछले पाँच सालों में बाल्कॉनी का टिकट साढ़े तीन रुपये से बढ़कर सात रुपये हो गया है यानी दुगना हो गया।

ऐसी हालत में फिल्म हिट हो जाय तो उतने पैसे चुकाने के बावजूद भी निर्माता आदि को लाभ होता है। लेकिन दर्शकों को अच्छी नहीं लगी तो कमाई बहुत कम हो जाती है। ऐसी हालत में निर्माताओं को लाभ मिलने के बदले कर्ज़ हो जाता है। कर्ज़ ज्यादा हो जाए तो हिन्दी फिल्मी दुनिया का बजट-संकट भी निश्चित है। आज तक अनेक मल्टि-स्टार फिल्में फ्लॉप हो चुकी हैं। इसका मतलब है कि हिन्दी फिल्मी दुनिया का बजट-संकट अब धीरे-धीरे नज़दीक आ रहा है। अभी तो फिर भी सोचने का वक्त है।

(2) नो-आइडिया का सवाल

इस साल के आरम्भ में दो फिल्मों के नाम बहुचर्चित थे—"शान" और "इन्साफ का तराजू"।

"शान" सचमुच मल्टि-स्टार फिल्म है। उसमें अमिताभ बच्चन, शशि कपूर, शत्रुघ्न सिन्हा, राखी, परवीन बाबी, बिंदिया गोस्वामी, और सुनील दत्त ने काम किया है। यह फिल्म 70 mm की है और लम्बी भी है, इस वजह से इसने दर्शकों का ध्यान काफ़ी खींचा।

"इन्साफ का तराजू" में ज़ीनत अमान है, पर बाकी नायक-नायिका नये आने वाले हैं। यह फिल्म इसलिए मशहूर हो गई है कि इस फिल्म में बलात्कार का दृश्य है।

लेकिन मैंने सुना कि यह दोनों फिल्में पश्चिमी फिल्मों की नक़ल हैं। "शान" जेम्स बॉण्ड की फिल्म "The Spy Who Loved Me" की नक़ल है, और "इन्साफ का तराज़ू" "Lipstick" की नक़ल है।

इनसे पहले भी कई नक़ल की गयी फिल्में बनाई गई थीं। मेरी याद में आती हैं—"कोशिश" (जापानी फिल्म की नक़ल), "परिचय" ("The Sound of Music"), "अभिमान" ("The Star Is Born") इत्यादि।

Scanned with CamScanner

और केवल विदेशी फिल्मों की नक़ल ही नहीं, बल्कि हिन्दी फिल्में दक्षिण भारत की फिल्मों की नक़ल करती हैं, और दक्षिण फिल्में हिन्दी फिल्मों की। "स र ग म" तेलगू फिल्म "Siri Siri Muvva" की, और "रेड रोज़" तमिल फिल्म "Sigappu Rojakkal" की नक़ल हैं।

भारत के अन्दर की बात है तो खास बात नहीं, लेकिन विदेशी फिल्मों से कहानी या आइडिया लेना कभी ग़ैर-कानूनी व्यवहार भी हो सकता है। सहज ही कहानी को भारतीय रूप दे दिया जाता है या फिल्म के छोटे-छोटे भागों को मूल फिल्मों से बदल दिया जाता है, फिर भी मूल आधार या कहानी लेना कला की चोरी है और रॉयल्टी या ऑरिजिनेलिटी की नज़र से ग़ैर-कानूनी है। भारतीय निर्देशकों और निर्माताओं को क्या यह बात मालूम नहीं है? या मालूम होते हुए भी काफ़ी रुपये देने से बचने के लिए वे न मालूम होने का दावा करते हैं ?

ऐसी बात केवल फिल्म की कहानी ही नहीं, फिल्मी संगीत के बारे में भी कही जा सकती है। लीजिए फिल्म "चलते-चलते" का गीत "दूर-दूर तुम रहे" या फिल्म "हीरा-पन्ना" का 'पन्ना की तमन्ना है'। 'दूर-दूर तुम रहे' अमरीकी गीत से और 'पन्ना की तमन्ना है' जापानी गीत की धुन से एकदम मिलती-जुलती है।

ऐसा क्यों होता है ?

मेरे ख्याल से इसका एक कारण यह है कि फिल्में ज्यादा हैं लेकिन कलाकार कम हैं। फिल्मों की संख्या जल्दी बढ़ सकती है, पर कहानीकार, संगीतकार और गीतकारों की संख्या उतनी जल्दी नहीं बढ़ सकती। निर्माता सदा चाहते हैं कि मशहूर कलाकारों से ही काम लें। इस कारण सीमा बहुत छोटी हो जाती है।

नक़ल हो या अनुकरण हो, यदि अच्छी फिल्म बनाई जाय तो ठीक है। लेकिन आजकल की फिल्में केवल सनसनीखेज भागों की ही नक़ल करती हैं। उनसे दर्शकों को संतोष नहीं मिल सकता है। दर्शक धीरे-धीरे देशी फिल्मों से ऊबते जा रहे हैं।

4. दक्षिण भारतीय फिल्मों का उत्थान

सबसे पहले संख्या को लीजिये। सन् 1979 में सबसे ज्यादा तमिल फिल्म बनीं। तमिल 140, तेलगू 133, मलयालम 131 और उनके बाद आती है हिन्दी 114। इन दस सालों में दक्षिण भारतीय फिल्मों की संख्या अचानक बढ़ गई।

इसका मतलब यह है कि दक्षिण भारत की फिल्मी दुनिया ने अब इतनी पूँजी जमा कर ली है जितनी अनेक फिल्में बनाने के लिए काफ़ी है। और साथ ही अनेक फिल्में देखने वाले दर्शकों की संख्या भी बढ़ गई है। अब दक्षिण भारत में दक्षिण फिल्मों के दर्शक हिन्दी फिल्मों के दर्शकों से ज्यादा हो चुके हैं। मैं इस साल मद्रास गई और देखा कि हिन्दी फिल्मों का टिकट आसानी से मिल जाता है लेकिन तमिल फिल्मों का टिकट मुश्किल से मिलता है। ख़ासकर कमलहसन की फिल्में बहुत लोकप्रिय हैं।

कमलहसन ने अब हिन्दी फिल्मों में भी काम करना शुरू किया है। मैंने सन् 1979 में पहली बार उसकी फिल्म देखी। वह फिल्म "Sigappu Rojakkal' थी और बाद में इस फिल्म की हिन्दी रिमेक "रेड रोज़" बनाई गई। "Sigappu Rojakkal" में कमलहसन ने हत्यारे का रोल अच्छी तरह निभाया। शांत, भद्र नौजवान है लेकिन उसके मन में खून की प्यास है। ऐसा रोल निभाकर उसको पूरी सफलता मिली।

उस फिल्म में कमलहसन की जोड़ी श्रीदेवी से थी। श्रीदेवी का अभिनय भी कुशल था। इन दोनों के आकर्षण से फिल्म बेहद मनोरंजक बनी।

और इस साल कमलहसन की दो फिल्में देखी, "Varumaiyin Niram Sivappu" और "Meendum Kokila"। "Varumaiyin Niram Sivappu" चार नौजवानों की कहानी है जो काम की खोज में दक्षिण भारत

Scanned with CamScanner

से दिल्ली आये हैं। तीन लड़के विश्वविद्यालय में पढ़ने के बाद दक्षिण भारत में काम ढूँढ़ते थे, पर नहीं मिलने के कारण दिल्ली में आ गये। वे साथ रहते हैं और हर रोज़ काम ढूँढ़ने के लिए या पैसा कमाने के लिए इधर-उधर जाते हैं। उनमें से एक कमलहसन है। उसके पास फ़िलॉसफ़ी का Ph. D. है। एक दिन वह दिल्ली स्टेशन पर एक लड़की से मिला। लड़की के पास बड़ा सामान था और लड़की ने कमलहसन को पोर्टर समझकर निवेदन किया कि ज़रा उसे उठा दें। पहले दोनों एक-दूसरे को दिल्ली रहनेवाला समझते थे, इसलिए हिन्दी में बात करते थे। लेकिन पैसा देने के समय लड़की अपने पर्स देखकर बिना सोचे तमिल भाषा में बोली तो कमलहसन चौंक उठा— "तुम तमिल हो ? !" "अरे, तुम भी ? !" दोनों तमिल भाषा में बोलने लगे और वहीं से कहानी शुरू होती है।

इस फिल्म का अन्त पूरा हैपी-एण्ड नहीं कहा जा सकता। अन्त तक कमलहसन को काम नहीं मिल सका और उसे नाई बनकर बारबर शॉप में काम करना पड़ा। दूसरी तरफ लड़की अभिनेत्री बनने के लिए दिल्ली आई। लेकिन उस आशा को पूरा नहीं कर सकी और अन्त में कमलहसन के साथ पुरानी गाड़ी को मकान बनाकर सुखी, लेकिन गरीब जीवन शुरू किया। लड़की का पात्र श्रीदेवी ने निभाया। उस फिल्म की कहानी ज़रा बे-सिर-पैर थी, पर कमलहसन के कुशल अभिनय, खासकर हास्य अभिनय से दर्शकों के मन भर गये।

दूसरी फिल्म "Meendum Kokila" का अब हिन्दी अनुवाद भी बनाया जा रहा है। मूल तमिल संस्करण में कमलहसन, श्रीदेवी और मलयालम फिल्म की अभिनेत्री दीपा ने काम किया है। दीपा का पात्र मशहूर अभिनेत्री कामिनी, कमलहसन वकील मणि और श्रीदेवी उसकी पत्नी कोकिला है। मणि और कोकिला एक साथ सुखी रहते थे और उनके एक पुत्री भी थी। एक दिन मणि अपने मित्र के साथ फिल्म स्टूडियो गया और कामिनी की सुन्दरता को देखकर उसके मन में लालसा हुई। मणि हर रोज़ कामिनी के पास जाने लगा। कामिनी ने मणि को एक केस भी करवाया, तो दोनों के दिल और नज़दीक आ गये। मणि के घर में आग लग गयी। कोकिला साहस जुटाकर कामिनी से मिलने गई और उससे प्रार्थना की कि मणि को उसे वापस सौंप दे। कामिनी कोकिला के भाव को समझकर मणि को दूर करने की कोशिश करने लगी। उसी समय मणि की बच्ची बीमार पड़ गई। अस्पताल में कोकिला की बेचैन हालत देखकर मणि बहुत पछताया और घर वापस लौट आया।

इस फिल्म की कहानी काफ़ी अच्छी थी और फिल्म की गति भी दर्शकों को फिल्म की ओर खींच रही थी तथा तीन नायकों का अभिनय भी उल्लेखनीय था।

ऐसी फिल्में देखकर पता चलता है कि कमलहसन सचमुच कमाल करने वाला अभिनेता है। गोल आँखें और मूँछ रखने वाला यह नौजवान अभिनेता ख़ास तौर से रोमांटिक कॉमेडी में चमकीला अभिनय करता है। उसके अभिनय में कला भी प्रतिबिंबित होती है। कमलहसन और श्रीदेवी की जोड़ी हमेशा दर्शकों को आकर्षित करती है।

इन दोनों के अलावा दक्षिण भारत में उभरते अभिनेता-अभिनेत्रियाँ और भी हैं। उनमें से शोभा सबसे आगे थी। लेकिन अफ़सोस की बात है, शोभा ने पिछले साल आत्महत्या कर ली। शोभा को खूबसूरत अभिनेत्री या ग्लैमर अभिनेत्री नहीं कह सकते थे, लेकिन उसकी सुन्दरता कुशल अभिनय से पैदा होती थी। मैंने सन् 1979 में उसकी फिल्म "Oru Veedu Oru Uragam" देखी। उस फिल्म में भी उसका अभिनय बहुत प्रभावशाली था।

केवल तमिल फिल्म ही नहीं, तेलगू फिल्मों में भी अनेक अच्छी फिल्में हैं। 1979 का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्राप्त करने वाली फिल्म "Shankarabharanam" काफी अच्छी, सुन्दर फिल्म है। इस फिल्म का संगीत कर्नाटक संगीत पर आधारित है और कहानी भी रस भरी है। "Shankarabharanam" के मुख्य पात्र शंकर शास्त्री को वी. पी. सोमयाजुलू ने निभाया। उसके बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है लेकिन उसने इस फिल्म में आत्म-अभिमानी संगीतकार के पात्र को यथार्थवादी अभिनय से निभाया और अभिनेत्री मंजू भर्गवी ने भी वेश्या के घर की

Scanned with CamScanner

लड़की होते हुए भी कला को गहरे मन से पसन्द करने वाली लड़की का पात्र सुन्दर अभिनय से निभाया। उसके नृत्य में भी ताज़गी थी।

इस सुन्दर फिल्म का निर्देशन के. वी. विश्वनाथन ने किया है। सुना है उन्होंने "Siri Siri Muvva" का निर्देशन भी किया है। "Siri Siri Muvva" दक्षिण भारत में बहुत हिट हुई और उसका हिन्दी अनुवाद "स र ग म" भी बनाई गई है। इन दो फिल्मों को देखकर मुझे लगा कि के. वी विश्वनाथन काफ़ी शक्तिशाली निर्देशक हैं।

दक्षिण भारत में इस तरह अच्छी फिल्में ज्यादा हैं, लेकिन उत्तर भारत में उन्हें देखने का मौका बड़ी मुश्किल से मिलता है। यह हिन्दी भाषा की तानाशाही का बुरा प्रभाव है। अगर फिल्म प्रेमी हो तो भाषा की जानकारी के बिना फिल्म समझ सकते हैं और देखने से मज़ा भी ले सकते हैं। कम से कम बम्बई या दिल्ली में निश्चित रूप से दक्षिण भारतीय फिल्में दिखाने का सिनेमाघर होना चाहिए, नहीं तो उत्तर भारत के लोग अच्छी और मनोरंजक फिल्में देखने के मौके से हमेशा के लिए दूर रह जायेंगे।

5. अब क्या होगा ?

अब हिन्दी फिल्मी दुनिया क्या हो जाएगी ? संख्या भी कम और क्षमता भी कम हो रही है, तो नतीजा एक ही है। सबसे पहले दक्षिण भारत में हिन्दी फिल्मों के मार्केट धीरे-धीरे छोटे हो जायेंगे और उत्तर भारत में भी दर्शक हिन्दी फिल्मों से ऊबकर अमरीकी या यूरोपीय फिल्में ज्यादा देखने लगेंगे। मल्टि-स्टार फिल्म एक के बाद एक फ्लॉप होती जाएँगी और हिन्दी फिल्मी दुनिया बड़े कर्ज़ से अपने-आप बरबाद हो जाएगी·····।

नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।

उससे बचने के लिए एक ही रास्ता है—अच्छी फिल्में बनाना। कुशल कहानी, शक्तिशाली निर्देशन, सुन्दर अभिनय इत्यादि लेकर क्षमतापूर्ण फिल्में बनानी चाहिए।

हिन्दी फिल्मों में अच्छी फिल्में बनाने की परम्परा है और अब भी ऐसी एक धारा है। आज इस धारा को और तेज़ करना चाहिए। उसकी जिम्मेदारी केवल फिल्म बनाने वालों की ही नहीं, हम फिल्म देखने वालों की भी है।

●

अब तक मैंने जो भारतीय फिल्में देखी हैं उन फिल्मों के नाम नीचे दिये गये हैं :

यात्रा नं०	तारीख़	स्थान	सिनेमा	फिल्म
	'75. 12. 28	बम्बई	लिबर्टी	जागते रहो
(1)	12. 31	नई दिल्ली	ओडेओन	खामोशी
	'76. 1. 6	,,	नाज़	फूल और पत्थर
	1. 7	,,	संगम	ज़ंजीर
	1. 8	,,	कमल	हाथी मेरे साथी
	1. 9	दिल्ली	गोलचा	गीत गाता चल
	1. 10	,,	अम्बा	शोले

Scanned with CamScanner

यात्रा नं०	तारीख़	स्थान	सिनेमा	फिल्म
(2)	'76. 12. 28	पठान (नेपाल)		कभी-कभी
	'77. 1. 1	नई दिल्ली	नटराज	दीवार
	1. 2	,,	ओडेओन	लैला-मजनू
	1. 4	,,	डिलाइट	दो अनजाने
	1. 5	लखनऊ	जय भारत	कच्चे धागे
	1. 6	,,	प्लाज़ा	प्रतिज्ञा
	1. 7	कानपुर	इम्पेलियर	मजबूर
	1. 10	इलाहाबाद	शिल्पी	आपबीती
	1. 12	बम्बई	इम्पेरियल	हेरा-फेरी
(3)	'77. 12. 16	बम्बई	ऑपेरा हाउस	अमर अकबर अन्थोनी
	12. 17	,,	मेटलो	भूमिका
	12. 18	,,	मराठा मंदिर	दरिंदा
	12. 19	पूना	मंगला	परवरिश
	,,	,,	नटराज	हम किसी से कम नहीं
	12. 20	,,	मंगला	आँधी
	12. 31	तेहरान (ईरान)	हाफ़िज़	सगीना
	'78. 1. 1	बम्बई	अप्सरा	दूसरा आदमी
	1. 3	नई दिल्ली	ओडेओन	आशिक हूँ बहारों का
	1. 4	दिल्ली	दीप	बेईमान
	1. 5	,,	नाज़	रोटी, कपड़ा और मकान
	,,	,,	खन्ना	दाग़
	1. 6	मद्रास	अन्ना	ज़िद
	1. 7	,,	लिटल आनन्द	Bangaru Bommalu (तेलगू)
	1. 8	,,	पलगोन	Kodimalar (तमिल)
	1. 9	,,	नूर जहाँ	Siri Siri Muvva (तेलगू)
	1. 13	कलकत्ता	इन्दिरा	स्वाति (बंगाली)
	1. 15	वाराणसी	विजय	देवर
	1. 18	जयपुर	अम्बर	घरौंदा
	,,	,,	,,	शोले
	1. 19	बम्बई	ग्लयक्शी	ममता
	1. 20	,,	लॅक्सी	चरणदास
(4)	'78. 12. 23	नई दिल्ली	शीला	कर्मयोगी
	,,	दिल्ली	गोलचा	पति, पत्नी और वह

Scanned with CamScanner

यात्रा नं०	तारीख़	स्थान	सिनेमा	फिल्म
	12. 24	नई दिल्ली	शीला	गैम्बलर
	12. 25	बम्बई	सूपर	खून का बदला खून
	12. 26	,,	ऑपेरा हाउस	27 डाउन
	12. 27	,,	अप्सरा	त्रिशूल
	,,	,,	अलंकार	मुकद्दर का सिकंदर
	12. 28	,,	नॉवेल्टी	शालीमार
	12. 29	,,	मैनर	दिल्लगी
	12. 30	,,	वंदना	स्वर्ग-नरक
	'79. 1. 2	,,	स्ट्रंड	आनन्द
	1. 3	,,	आनन्द	बॉबी
	1. 4	,,	गंगा	डॉन
	1. 5	,,	शालीमार	कस्मे-वादे
	,,	,,	जमना	मैं तुलसी तेरे आँगन की
	1. 6	,,	ऑपेरा हाउस	जिस देश में गंगा बहती है
	1. 7	,,	स्ट्रंड	सीता और गीता
	1. 8	कलकत्ता	चित्रपुरी	ईमान-धर्म
	1. 9	,,	मेट्रो	सत्यम् शिवम् सुन्दरम्
	,,	,,	जमना	यादों की बारात
	1. 11	मद्रास	देवी परडैस	Sigappu Rojakkal (तमिल)
	1. 12	,,	देवी	Oru Veedu Oru Uragam (तमिल)
	,,	,,	शांति	फंदेबाज़
	1. 14	त्रिवेन्द्रम	श्री कुमार	बेशरम
	1. 17	बम्बई	शारदा	नमक हराम
	,,	,,	सत्यम	शिक्षा
	1. 18	,,	,,	सारा आकाश
	1. 19	,,	स्ट्रंड	कोशिश
(5)	'79. 12. 21	नई दिल्ली	फिल्मिस्तान	सुहाग
	12. 22	दिल्ली	अम्बा	अभिमान
	,,	नई दिल्ली	सपना	आलाप
	12. 23	,,	एरोस	कसौटी
	12. 30	बम्बई	मिनेल्वा	काला पत्थर
	12. 31	,,	गंगा	मिस्टर नटवरलाल
	'80. 1. 2	,,	ड्रीमलैण्ड	नूरी
	1. 4	,,	ऑपेरा हाउस	जुनून

Scanned with CamScanner

यात्रा नं०	तारीख़	स्थान	सिनेमा	फिल्म
	1. 5	बम्बई	बरखा	गंगा की सौगंध
	1. 7	,,	स्वास्तिक	नौकर
	1. 8	,,	शालीमार	पूर्व और पश्चिम
	1. 10	नई दिल्ली	रीगल	रत्नदीप
(6)	'80. 12. 27	नई दिल्ली	रीगल	दोस्ताना
	,,	,,	शीला -	राम बलराम
	12. 29	,,	डिलाइट	आशा
	,,	दिल्ली	गोलचा	कस्तूरी
	12. 31	बम्बई	रीगल	थोड़ी-सी बेवफ़ाई
	,,	,,	अप्सरा	कुर्बानी
	'81. 1. 2	,,	मराठा मन्दिर	अब्दुल्ला
	,,	,,	शालीमार	बॉम्बे टू गोआ
	1. 3	,,	सत्यम	जुर्माना
	1. 4	,,	मेट्रो	पत्थर के सनम
	,,	,,	,,	पायल की झंकार
	1. 6	,,	मिनेल्वा	शान
	1. 8	हैदराबाद	,,	दो और दो पाँच
	,,	,,	ज़मरूद	गृहप्रवेश
(7)	'81. 1. 9	हैदराबाद	मनोहर	अदालत
	1. 10	,,	सुदर्शन	Shankarabharanam (तेलगू)
	,,	,,	नवरंग	जुदाई
	1. 11	मद्रास	एमेरल्ड	दिल का हीरा
	1. 13	,,	सुवम्	Nizhalgal (तमिल)
	1. 14	,,	अन्ना	बंदिश
	,,	,,	सफैया	Varumaiyin Niram Sivappu (तमिल)
	1. 17	त्रिवेन्द्रम	श्रीकांत	आपके दीवाने
	1. 18	,,	एम. पी.	Manzil Virinja Pookal (मलयालम)
	,,	,,	श्री पद्मनाभ	Meendum Kokila (तमिल)
	1. 20	बम्बई	गरैक्सी	हम पाँच
	1. 22	नई दिल्ली	सुदर्शन	दुल्हन वही जो पिया मन भाये

Scanned with CamScanner

आधुनिक जापानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

शिगेओ आराकि

मुझे भारत के साहित्यकारों के मुँह से जिन जापानी साहित्यकारों का नाम सुनने का मौका मिला, उनमें हैं नोबेल पुरस्कार से सम्मानित यासुनारि कावाबाता, ओसामु दाज़ाइ, युकिओ मिशिमा और योने नोगुचि। वे अवश्य विदेशी साहित्यकारों एवं आलोचकों को परिचित हैं परन्तु हमारे जापानी साहित्य के इतिहास में वे जापानी साहित्य का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

उनका नाम इसलिए विदेशों में प्रसिद्ध है कि उनकी रचनाएँ विदेशी साहित्यकारों एवं आलोचकों को पसन्द आती हैं।

मैं यहाँ इस तरह के विदेशियों की पसन्द रचनाओं को छोड़कर जापानी लोगों की दृष्टि के आधार पर जापानी साहित्य का इतिहास और प्रवृत्तियों के विषय में भारतीय दोस्तों से कहना चाहता हूँ।

आमतौर पर कहा जाता है कि जापानी संस्कृति नकल की संस्कृति है। परन्तु सही ढंग से देखा जाए तो मालूम हो जाता है कि आधुनिक जापानी साहित्य का इतिहास हमारे देश के परम्परागत साहित्य एवं सांस्कृतिक मूल्यों और पाश्चात्य देशों के साहित्यिक, सांस्कृतिक मूल्यों के संघर्ष और समन्वय का इतिहास है। इस प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थिति भारतीय साहित्य की ऐतिहासिक परिस्थिति में भी देखने को मिलेगी। भारत में भी महान साहित्य परम्परा रही है, फिर भी आधुनिक काल में पाश्चात्य देशों के साहित्य एवं संस्कृति का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा और उस प्रभाव से संघर्ष करते-करते भारतीय साहित्यकारों ने अपने देशीय आधुनिक साहित्य का निर्माण किया। दोनों देशों के आधुनिक साहित्य की ऐतिहासिक परिस्थिति की समानता में दोनों देशों के साहित्यकारों का समान संघर्ष भी देखने को मिलता है।

इसलिए मैं आधुनिक जापानी साहित्य का इतिहास विशेष रूप से भारतीय साहित्यकारों के समक्ष पेश करना चाहता हूँ। मैं भारतीय साहित्य का इतिहास थोड़ा जानता हूँ। दोनों देशों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध के बारे में यहाँ लिखने की जगह नहीं है। पर भारत के पाठक महोदय इस लेख से दोनों देशों के आधुनिक साहित्य की समानता और भिन्नता भी देख सकेंगे। यह लेख निम्नलिखित विषयों के अनुसार तीन भागों में प्रस्तुत किया जाएगा। इस अंक में आधुनिक साहित्य निर्माण काल (सन् 1870—1920) की प्रवृत्तियाँ और रचनाएँ, तृतीय अंक में मार्क्सवाद से प्रभावित श्रमजीवी साहित्य और प्रतिक्रियावादी अति-राष्ट्रीयवादी रोमांटिसिज्म साहित्य की प्रवृत्तियाँ और रचनाएँ अर्थात् सन् 1920 से लेकर द्वितीय महायुद्ध के जापान की हार तक की प्रवृत्तियाँ और रचनाएँ, चतुर्थ अंक में द्वितीय महायुद्ध के बाद से आज तक की साहित्यिक प्रवृत्तियों और रचनाओं के बारे में अवगत कराया जाएगा। इस निबन्ध में कहानियों एवं उपन्यासों के बारे में ही कहा जाएगा क्योंकि कविता, नाटक आदि का जापानी भाषा की विशेषताओं और परम्परागत संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अवगत कराना कठिन काम है। इधर कहानी व उपन्यास युग की भावनाओं को सीधा प्रकट करने का साहित्य है

Scanned with CamScanner

उपन्यास की प्रवृत्तियों को बताने से सिर्फ जापानी साहित्य का इतिहास ही नहीं, बल्कि जापानी समाज में होने वाले परिवर्तन से भी पाठक महोदय परिचित हो सकेंगे।

●

मेइजि युग की राजनैतिक क्रांति (सन् 1868) से जापान का वास्तविक आधुनिकीकरण प्रारम्भ हुआ। इस क्रांति की पृष्ठभूमि अर्थात् हमारे देश के आधुनिकीकरण की शुरूआत के बारे में विचार करने के वक्त जापान के अपने इतिहास में से उभरी हुई देशीय आधुनिकता और पाश्चात्य देशों से आयातित आधुनिक सभ्यताओं के प्रभाव से उत्पन्न आधुनिकता के बारे में विचार करना चाहिए। वस्तुतः हमारे देश की आधुनिकता का मूल कारण पाश्चात्य देशों की आधुनिक सभ्यता का प्रभाव था, परन्तु मेइजि क्रांति से पूर्व ही जापान स्वयं आधुनिकता की ओर चल रहा था, पर इसकी गति धीमी थी और अपने देश की आन्तरिक शक्ति से पूँजीवादी क्रांति पैदा करने का वक्त तक नहीं पहुँचा था। लेकिन पाश्चात्य देशों के साथ सम्पर्क में आने से जापान में मेइजि क्रांति के वातावरण तैयार हो गया था। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि यह अपने इतिहास में उभरी हुई आधुनिकता का अंकुर था।

16वीं शताब्दी तक जापान में सामंती प्रथा स्थिर हो गई थी। इस सामंती युग में व्यापारी वर्ग के लोगों की शक्ति बढ़ गई थी। इस वर्ग के व्यापारी लोगों की जिन्दगी को चित्रित करने वाले लेखक भी पैदा हुए। उन लोगों ने राजा, भगवान, सत्ता आदि के प्रति आधुनिक मानव का विचार प्रकट करने वाली उच्चस्तरीय कहानियों का सृजन किया। 17वीं शताब्दी में नाटककार मोन्ज़ाएमोन चिकामात्सु और कहानीकार साइकाकु इहारा ने अच्छी यथार्थपूर्ण रचनाएँ लिखीं। मेइजि क्रांति युग के पूर्व शुन्सुइ तामेनागा इस युग के लोकप्रिय लेखक थे। लेकिन सामंती समाज में व्यापारी वर्ग के लोगों का साहित्य शिक्षा की दृष्टि से और नैतिक दृष्टि से नीचा साहित्य समझा जाता था। उस युग के सत्ताधारी वर्ग के पुरुषों को अर्थात् क्षत्रिय वर्ग (बुशि) के पुरुषों को चीनी दर्शन शास्त्र के आधार पर लिखे गए राजनीति शास्त्र, इतिहास, नीतिशास्त्र और चीनी कविताएँ पढ़नी आवश्यक थीं। सामंतवादी सरकार की नीति के अनुसार व्यापारी वर्ग का केवल वही साहित्य, जिसमें राजनीति और सामाजिक आलोचना न थी, स्वीकार किया गया। इसके परिणामस्वरूप व्यापारी लोगों का साहित्य धीरे-धीरे वेश्याघर को विषय बनाकर प्रेम कथाओं में ही डूब गया। सामंतवादी आचार के अनुरूप नायक और वेश्या नायिका के सम्बन्ध टूट जाने की दुखमय प्रेम कथाएँ और अन्य दुःखान्त कथाएँ लिखी गई थीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में व्यापारी वर्ग के साहित्य का पतन होने लगा था और विषयों की पुनरावृत्ति लुप्त होने वाला था।

सामंती समाज में जापानी साहित्य की इस दुःखमय परिस्थिति में पैदा हुई विशेषताएँ, राजनीति एवं विचारधारा के प्रति उपेक्षा, समाज से दूर रहना, विशिष्ट सीमित दुनियाँ में डूबना, भावना एवं भावात्मकता की अधिकता, तर्कसंगत ढंग से लिखने का अभाव, लेखकों की हीन भावना आदि थीं और जापानी साहित्य की आधुनिकता की शुरूआत इन जापानी साहित्य की कमियों से लड़ाई से हुई। फिर भी इसके बाद के हमारे आधुनिक साहित्य में भी इन विशेषताओं की गहरी छाप मौजूद है। व्यापारी लोगों के साहित्य में समाज के प्रति आलोचनात्मक अभिव्यक्ति मना थी और सत्ता वर्ग के साहित्य में चीनी दर्शन एवं चीनी काव्य के आधार को ही स्वीकार किया गया था। इसलिए 1887 के आस-पास साहित्यिक आन्दोलन शुरू होने तक हमारे देश के साहित्यकार आधुनिक राष्ट्र के निर्माण काल के राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों को कहानी में नहीं ला सके। इस युग के व्यापारी वर्ग का साहित्य अर्थात् दूसरे शब्दों में जनता का साहित्य जापानी जन-जीवन में एकदम आयातित पश्चिमी देशों के सभ्यता, संस्कृति की असममिति को विषय बनाकर हास्य एवं व्यंग्यात्मक ढंग से अधिक लिखा गया। सत्ता वर्ग अर्थात् बौद्धिक वर्ग का साहित्य राजनैतिक आन्दोलन के एक अंग के रूप में लिखा जाने लगा। जनता का साहित्य सिर्फ हलका व्यंग्य था और इसका उद्देश्य मनोरंजन के लिए ही था। इनमें नये युग की विचारधारा का अभाव था और इधर बौद्धिक

Scanned with CamScanner

वर्ग का साहित्य लेखक के आदर्श के अनुसार लिखा गया था। यह यद्यपि उत्तेजनात्मक था पर इसमें चीनी दर्शन में चित्रित की गई वीरगाथा से बुनियादी अन्तर नहीं था जो बौद्धिक वर्ग के पठन-पाठन का मुख्य आधार था।

जापान में पाश्चात्य देशों की सभ्यता का आयात पाश्चात्य देशों की ही तरह के राष्ट्र निर्माण के लिए किया गया था। इस आयात से बौद्धिक वर्ग के नवयुवकों में राजनैतिक-आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन, विज्ञान शास्त्र के अध्ययन करने की चाह उत्पन्न हुई और इनके द्वारा सरकारी नौकरी पाने की चाह भी। अब बौद्धिक वर्ग के लोग परम्परागत शिक्षा को छोड़कर अपने देश की प्रगति के लिए पाश्चात्य देशों के राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्प विज्ञान आदि को आयातित करके पढ़ने लगे। परन्तु साहित्य का देश के निर्माण से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण कुछ उपेक्षित ही रहा।

साहित्यिक अनुवाद भी केवल देश हित के लिए किया गया। S. Smiles का "Self Help" "पश्चिमी देशों में सफलता की कहानियाँ" शीर्षक से 1871 में अनुवाद किया गया। इसमें पश्चिम देशों के आविष्कारकों या समाज सुधारकों की सफलता की कहानियाँ हैं। 19वीं शती के आठवें दशक में राजनैतिक उपन्यास के रूप में फ्रेंच-क्रांति को चित्रित करने वाला A. Dumas के उपन्यास और राजनैतिक संघर्ष को चित्रित करने वाले P. Wernier के उपन्यास, F. Schiller के "Wilhelm Tell", T. Moore के "Utopia" और J. J. Rousseau की रचनाओं का अनुवाद किया गया और जन-साधारण के लिए Lord Lytton, W. Scott की कहानियाँ "Decameron", "Arabian Nights" का अनुवाद किया गया। Shakespeare के नाटकों में "Romeo and Juliet" प्रेमकथा और "Julius Caesar" राजनैतिक नाटक और "Marchant of Venice" पश्चिमी न्याय-व्यवस्था पर आधारित रचनाओं का कहानी के रूप में अनुवाद किया गया। प्रेम कथाओं के अनुवाद कार्य में एक प्रकार की व्यंग्यात्मक भावना होती थी। वह यह थी कि इस संक्रमणकाल में देश की प्रगति, निर्माण के लिए बहस और सत्ता में शामिल होने की जो अभिलाषा, जो बौद्धिक वर्ग के लोगों के मन में थी। और उस गम्भीर लोगों के प्रति हास्य के साथ उड़ाना चाहते थे कि पश्चिम देशों के लोग भी प्रेम करते हैं।

●●

इस प्रकार की परिस्थिति में हमारे देश में आधुनिक साहित्य सन् 1887 के आसपास प्रारम्भ होता है। इस काल की उल्लेखनीय कृतियाँ शोयो त्सुबोउचि का साहित्यिक सिद्धान्त "शोसेत्सु शिन्जुइ" ("उपन्यास का तत्व" सन् 1885) और शिमेइ हुतावातेइ का उपन्यास "उकिगुमो" ("बहता छोटा बादल" 1887) हैं। मेइजि के राजनैतिक क्रांति के 20 साल बाद समाज स्थिर होता जा रहा था। अस्थिर समाज में राजनैतिक आदर्श एवं बड़े अफसर बनने का सपना जिन नवयुवकों ने देखा था अब उन्हें अपना सपना टूटता हुआ महसूस होने लगा था।

इस युग तक लेखन कार्य परम्परागत दृष्टि से कुछ हेय कार्य समझा जाता था। इसलिए जब शोयो त्सुबोउचि साहित्यकार बन गया तब लोगों को आश्चर्य हुआ। क्योंकि शोयो ने देश के नेता बनाने वाले विश्वविद्यालय में पढ़ाई की थी यानी वह एक बौद्धिक आदमी था। उससे प्रभावित होकर कुछ और शिक्षित नवयुवक भी साहित्यकार बनने के लिए प्रयास करने लगे। शोयो ने "शोसेत्सु शिन्जुइ" में लिखा है कि उपन्यास एक कला है, पाश्चात्य देशों में कला को सम्मान दिया जाता है और उपन्यास नैतिक एवं राजनीतिक विचारधारा के प्रचार का माध्यम नहीं, बल्कि अपने में स्वयं एक मूल्यवान उपलब्धि होता है, और उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व मानव स्वभाव को जानकर इसके मनोभावों को यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रण करना है। तोक्यो विदेशी भाषा विद्यापीठ (आज का तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय) में रूसी भाषा पढ़ रहे शिमेइ हुतावातेइ ने पुशकिन (A. S. Pushkin), लेरमोनतोव (M. Y. Lermontov), गोगोल (N. V. Gogol), तुरगेनेव (I. S. Turgenev), गोन्चारोव (I. A. Goncharov) आदि की कृतियों एवं शोयो के "शोसेत्सु शिन्जुइ" से प्रभावित होकर एक उपन्यास "उकिगुमो" ("बहता छोटा बादल") लिखा। यह मेइजि क्रांति के बाद के नये जापान अर्थात् आधुनिक राष्ट्र बनाने के वक्त लिखा गया प्रथम उपन्यास है।

Scanned with CamScanner

राजनैतिक एवं सामाजिक संक्रमणकाल में लिखे गये उपन्यासों में चित्रित किये गये नायक हमेशा आदर्शवादी एवं उद्यमी होते थे परन्तु इस उपन्यास का नायक ऐसा नहीं था। इस उपन्यास का नायक बुन्जो सीधा-साधा और शिक्षित आदमी था। वह चमचागीरी नहीं कर सकता था इस वजह से उसे सरकारी नौकरी छोड़नी पड़ी। नौकरी खोने के कारण उसकी मंगेतर नायिका ओसेइ भी उससे धीरे-धीरे दूर हो जाती है। ओसइ दूसरे आदमी से प्यार करने लगी जो आदमी कभी बुन्जो के साथ काम करता था और वह आदमी बिना शादी किये ही ओसेइ से शारीरिक आनन्द उठाता रहा। बेरोजगार बुन्जो ओसेइ के लिए कुछ नहीं कर सकता था और अपने को शक्तिहीन और असमर्थ जानकर वह क्षोभ में पड़ गया। 'उकिगुमो' को हमारे देश के आधुनिक साहित्य का प्रथम उपन्यास कहा जाने के तीन कारण हैं—एक तो यह कि उस उपन्यास में सर्वप्रथम साहित्यिक भाषा को बोलचाल की भाषा में बदलकर लिखा गया; दूसरा, इसमें मनोवैज्ञानिक चित्रण काफी यथार्थपूर्ण था और तीसरा, लेखक के व्यक्तित्व और भाग्य, नायक के व्यक्तित्व और भाग्य दोनों में परस्पर गहरा सम्बन्ध था। लेखक को लग रहा था कि आधुनिक अहम् को जागृत करके इन्सान की तरह जीने की उम्मीद रखने वाले नवयुवक इस समाज में नहीं जी सकते और उन्हें अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार लेखक ने अपनी भावनाओं को इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। इसमें सत्ता एवं सामाजिक व्यवस्था के प्रति लेखक ने अपने आक्रोश को प्रकट किया। हमारे देश का आधुनिक साहित्य वस्तुतः शासक वर्ग अथवा समाज को काबू करने वाले वर्ग की देन न होकर, शासन व्यवस्था से निकलने वालों की देन था अथवा सत्ता द्वारा पीड़ित लोगों की उपलब्धि था। आधुनिक राष्ट्र निर्माण काल मानों बौद्धिक वर्ग की प्रतियोगिता का युग था—सत्ता, पूँजी, धन, शक्ति और जनता को अपने हाथ में लेने की। किन्तु कटु यथार्थ और आदर्श जीवन के अन्तर के विषय में चिन्तन करने वालों द्वारा ही आधुनिक जापानी साहित्य की सृष्टि हुई। शिमेइ के उपन्यास का नायक बुन्जो एक सत्ता और व्यवस्था द्वारा पीड़ित व्यक्ति था और उसके पास वह मानवता, आधुनिकता और कलात्मकता थी जो अन्य व्यक्तियों के पास नहीं थीं। बुन्जो के व्यक्तित्व में हम जापानी आधुनिक साहित्य की प्रवृत्ति देख सकते हैं। जापानी आधुनिक साहित्यकार पाश्चात्य आधुनिक साहित्य से प्रभावित होते हुए भी सत्ता से निकलने वाले एवं पीड़ित लोग थे। आधुनिक साहित्यकारों की प्रवृत्ति बुनियादी तौर पर सत्ता के प्रति आलोचनापूर्ण थी।

●●●

"शोसेत्सु शिन्जुइ" ("उपन्यास का तत्व") में प्रतिपादित यथार्थवादी लेखन आन्दोलन से प्रभावित होते हुए भी इसके बाद पूर्व युग के कथानकों पर आधारित लोकप्रिय उपन्यास अधिक लिखे गये। इनमें से प्रमुख थे कोयो ओजाकि का "कोंजिकि याशा" ("पैसे से आकर्षित लोग" 1897) और रोहान् कोदा का "गोजूनो तो" ("पाँच मंजिल का पगोड़ा" 1891)। "कोन्जिकि याशा" में अपने प्रेमी से प्यार करते हुए भी अमीर आदमी से शादी करने का रास्ता चुन लेने वाली प्रेमिका की जिन्दगी और प्रतिरोध में सूदखोर बने प्रेमी की जिन्दगी का चित्रण है। यह उपन्यास दुःखमय बन्धनग्रस्त उच्चवर्गीय जीवन व्यतीत करते सच्चे प्रेमी की स्मृति में डूब जाती प्रेमिका को चित्रित करने के कारण बहुत लोकप्रिय हो गया।

"गोजूनो तो" जूबे नामक प्रतिभावान् बढ़ई द्वारा लालच, उत्पीड़न एवं अपनी बिरादरी से निष्कासित होकर भी अपने कलात्मक आदर्श के लिए पाँच मंजिला पगोड़ा बनाने की कहानी है। इस रचना में लेखक ने जापानी लोगों के कलाबोध, कलावादी और एशियायी अध्यात्मवादी भावनाओं को एक पुरुषार्थी रूप में चित्रित किया है। "गोजूनो तो" क्षत्रिय जाति के शिक्षित लोगों में काफी लोकप्रिय हुआ।

इस युग में यथार्थवादी लेखन आन्दोलन के विपरीत कोयो ओज़ाकि के शिष्य क्योका इजुमि ने पूर्व युग के Decadence की रमणीय भावना के पुनरुत्थान के साथ-साथ अपने साहित्य में मायावी एवं रहस्यमय सौन्दर्य-शास्त्रवादी दुनिया का निर्माण किया और यथार्थपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति या मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति को छोड़कर काल्पनिक

Scanned with CamScanner

दुनिया को यथार्थपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया। काल्पनिक दुनिया के चित्रण की साहित्य धारा में गम्भीर-उपन्यास और दुखांत उपन्यास काफी मिलते है। गम्भीर उपन्यास लिखने वालों में बिज़ान कावाकामि और दुःखांत-उपन्यास लिखने वालों में र्‌यूरो हिरोत्सु प्रसिद्ध हैं। उन लोगों ने रोगार्त्त के समय भावुक और निराशावादी विचार से समाज के पहलुओं को एक काल्पनिक दुनिया में ढालकर अभिव्यक्त किया।

बिज़ान के "शोकिकान" ("सचिव" 1895) में सरकारी अधिकारी और व्यापारी द्वारा किये गये षड्यन्त्र का चित्रण किया गया है और "उरा तो ओमोते" ("पीछे और सामने" 1895) की कहानी में नायक दिन में समाज-सेवक का काम करता है और रात में डाकू बन जाता है। नायक अंत में इस अंतर्विरोधी जीवन से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या कर लेता है। वस्तुतः लेखक ने स्वयं भी इस उपन्यास लिखने के बाद आत्महत्या कर ली थी। र्‌यूरो के "इमादो शिन्‌जू" ("इमादो में प्रेमी-प्रेमिका द्वारा आत्महत्या" 1896) में एक वेश्या की कहानी प्रस्तुत की गई है जिसका अपने प्रेमी से सम्बन्ध टूट जाता है और निराश वेश्या की एक-दूसरे ग्राहक के प्रति, जो कि उसके लिए अपना सारा धन नष्ट कर देता है, संवेदना में उसके साथ आत्महत्या कर लेती है।

जापान-चीन युद्ध में विजय के बाद जापान में आर्थिक दृष्टि से सूत-उद्योग जैसे लघु उद्योगों का भरपूर विकास हुआ था और प्रारम्भिक पूँजीवादी व्यवस्था का निर्माण होने लगा। विचारधारा में राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति दृढ़ होकर समाज में परस्पर विरोधी भावना, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में विचार का, नीति का अन्तर उभरने लगा। इस युग की परिस्थिति को प्रतिबिम्बित करके लोकप्रिय हुआ उपन्यास रोका तोकुतोमि का "हो तो तो गिसु" ("रात में चहचहाता पक्षी" 1898) था। यह सेनाधिपति की विवाहिता पत्नी की दुखमय कहानी है। पति की अनु-पस्थिति में, जो कि युद्ध में भाग लेने के लिए घर से बाहर गया हुआ था, क्षय रोग से पीड़ित नायिका को घर के लोगों द्वारा तिरस्कृत कर दिया जाता है। नायिका अपने पति से प्यार करती है, पर उससे मिल नहीं पाती है और क्षय रोग के कारण मर जाती है। पति भी उससे प्यार करता है पर उसके लिए कुछ भी नहीं कर पाता। अंत में पति अपनी पत्नी की समाधि के सामने रो पड़ता है। लेखक रोका ने इसमें सामंतवादी परिवार प्रथा की आलोचना की थी। नायिका का मृत्यु के समय चिल्लाकर कहना कि "अगले जन्म में मैं कभी स्त्री के रूप में इस दुनिया में नहीं आऊँगी" संभवतः हमारे देश की आधुनिक स्त्री के जागरण की शुरूआत कहा जा सकता है। रोका ने ईसाई धर्म में दीक्षा ली और टालस्टाय के मानवतावाद से प्रभावित हुआ और बाद में देहात में एकान्त जीवन व्यतीत करते-करते उसके विचार में फिर परिवर्तन हुआ। वह विचार परम्परागत विचारधारा की ओर लौट आया। और वह प्रकृति, भाववाचक एवं विश्वव्यापक परमेश्वर दर्शन को मिश्रित करके अपने धर्म बनाकर मानने लगा। इस प्रकार के लेखक की जीवन-यात्रा 20वीं शती के पूर्वार्द्ध से हमारे देश के ईमानदार लेखकों में अधिक मिलती हैं। समसामयिक युग के जापानी समाज के अमानवीय तत्व को उपन्यास की विषयवस्तु बनाने वाले उपन्यासकारों में नाओए किनोशिता प्रमुख था। उसने "हिनो हाशिरा" ("अग्नि का खम्भा" 1904) में कोयला मज़दूरों की हड़ताल और युद्ध विरोधी अभियान आदि की राजनैतिक घटनाओं को पृष्ठभूमि में रखकर सैनिक अधिकारी, राजनीतिज्ञ, व्यापारी लोगों के प्रति संघर्ष करने वाले नायक (समाचार पत्र का संवाददाता) का चित्रण किया। "ओत्तो नो कोकुहाकु" ("पति का बयान" 1904) में उसने यह चित्रित किया कि वकील नायक एक देहाती कस्बे में पत्नी के घर में रहता है वह पत्नी के घर की और देहाती सामंती प्रथा, रीति-रिवाज से लड़ता है। इस उपन्यास को 19वीं शती के 8वाँ दशक के राजनैतिक उपन्यास और 20वीं शदी के दूसरे दशक में आने वाला श्रमजीवी साहित्य (Proletarian Literature) को जोड़ने का उपन्यास कहा जा सकता है।

नाओए किनोशिता स्वयं वकील था और उसने वेश्या प्रथा उन्मूलन आन्दोलन एवं हमारे देश के पहले प्रदूषण विरोधी अभियान (आशिओ नामक ताँबे के कारखाने से विष बहाने के कारण कई लोग मर गये थे।) में सक्रिय कार्य किया था। उन्होंने अपने साथी के साथ समाजवादी लोकतांत्रिक दल की स्थापना की थी किन्तु सरकार

Scanned with CamScanner

के दबाव से उनका दल भंग किया गया। इसके बाद उन्होंने "हेइमिन शिन्बुन" ("जनता का समाचार पत्र") के संवाददाता बनकर जापान-रूस युद्ध के प्रति युद्ध विरोधी आलोचना की। वे ईसाई समाजवादी थे पर बाद में उन्होंने भी समाजवाद को छोड़ दिया और ईसाई धर्म से भी दूर होकर बौद्ध धर्म में मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता चुन लिया था।

●●●●

इस युग के बाद जापानी साहित्य ने प्रकृतिवाद के युग में प्रवेश किया जो जापानी आधुनिक साहित्य की विशिष्टता है वह आज भी जापानी साहित्य का आधार है। रोमांटिकवाद और प्रकृतिवाद के संक्रमणकाल में दोप्पो कुनिकिदा ने उस युग की आत्मा को गहराई से चित्रित किया था। उनके मन में दो प्रकार के मनोभाव मौजूद थे। एक तो राजनैतिक एवं सामाजिक आकांक्षा, दूसरी ईसाई धर्म की भक्ति भावना, यह दोनों इनके मन में मौजूद थे इसलिए लालसा, आकांक्षा और धर्म के बीच उनका मन डोलता रहा।

अत: उन्होंने इस तरह की अपनी आन्तरिक यातना को उपन्यास में व्यक्त किया। उनके उपन्यास अपनी आन्तरिक अनिवार्यता से लिखे गये थे, इसी वजह से उनका लेखन साधारण उपन्यास से भिन्न था।

दोप्पो कुनिकिदा निराशा में प्रकृति की सुन्दरता को भावकाव्यात्मक एवं रोमांटिक तरीके से "मुसाशिनो" (तोक्यो के निकट क्षेत्र का नाम, 1898) नामक उपन्यास लिखा और "ग्यूनिकु तो बरेशो" ("गाय का मांस और आलू". 1901) में आदर्श और यथार्थ की भिन्नता को चित्रित किया और "उन्मेइरोन्जा" ("भाग्यवादी" 1902) "ताके नो तो" ("बांस का दरवाजा" 1908) के द्वारा उनकी रचनाओं में प्रकृतिवाद की प्रवृत्ति दृढ़ हो जाने के साथ-साथ यथार्थ के प्रति निराशा की भावना भी स्थिर हो जाती थी। अंत में उनके निराशा की भावना युग और समाज को पार कर रहस्यमय परम तत्व की ओर उन्मुख कर देती है। वे आधुनिक साहित्य में मानव की मुक्ति की खोज करने वाले पहले लेखक थे। वे इस युग के उच्चकोटि के रोमांटिकवादी लेखक थे और उनका लेखन आने वाले प्रकृतिवादी युग के लेखन के लिए नमूना बन गया था। कुनिकिदा आधभूत जीवन मूल्यों के विचारक भी थे।

रूस-जापान महायुद्ध के बाद जापानी समाज तेज गति से परवर्तन होने लगा। अर्थ-व्यवस्था में लघु उद्योग का बड़े उद्योग में परिवर्तन होने लगा। इस युग में लोहे का उत्पादन एकदम बढ़ गया। साहित्यकारों की अभिरुचि राजनीति, समाज, परिवार प्रथा एवं सामंतवादी भावना पर केन्द्रित होने लगी। अच्छे उपनयास लिखने के उद्देश्य से कहीं अधिक यह महत्वपूर्ण हो गया था कि साहित्यकारों को किस तरह की जिन्दगी जीनी है और किस प्रकार समाज देखना है। साहित्यकारों के लिए विचारधारा और जीने का तरीका महत्वपूर्ण हो गए। अर्थात् यह युग पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रभाव को छोड़कर नये साहित्य का निर्माणकाल कहा जा सकता है। साहित्यकारों ने पहले प्रकृति को जापानी भाषा में यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रण करने के अभ्यास से शुरू करके फ्रेंच के E. Zola की शैली, Rousseau की विचारधारा, रूस के Turgenev, Tolstoi, Dostoevskii से पिछड़े समाज की परिस्थिति के प्रति विरोधी जीवन जीने का तरीका सीखा।

इस धारा का कीर्तिमान उपन्यास था तोसोन् शिमाज़ाकि का "हाकाइ" ("चेतावनी को तोड़ना" 1906)। उन्होंने आधुनिक विचारधारा से प्रभावित होने की वजह से परम्परागत जापानी समाज में अस्वीकार की गई अपनी भावना को उपन्यास के नायक में डाल दिया। नायक का नाम उशिमात्सु है। वह समाज में अन्यायपूर्ण तरीके से अलग किया गया बुराकुमिन (जापानी अछूत जाति) है। उसकी कहानी इस प्रकार है।

बड़ी कठिन परिस्थिति में पढ़ाई समाप्त करके उशिमात्सु एक देहाती प्राथमिक स्कूल का अध्यापक बन गया था। उसके पिता ने उससे हमेशा के लिए अपनी जाति को छिपाने को कहा। पाश्चात्य आधुनिक विचारधारा का आगमन होते हुए भी देहाती क्षेत्र में दृढ़ सामंती रीति-रिवाज मौजूद थे। अगर गाँव के किसी भी आदमी को

Scanned with CamScanner

उशिमात्सु की जाति मालूम हो जाती तो उसको नौकरी छोड़नी पड़ती थी। इसलिए उसके पिता ने चेतावनी दी थी। उसको अपनी जाति को छिपाने के कारण मानसिक कष्ट उठाना पड़ा। फिर भी उसमें अपनी जाति बताने की हिम्मत नहीं थी। पिता की मृत्यु और जाति तोड़ो आन्दोलन के एक सक्रिय कार्यकर्त्ता की हत्या, और उस कार्यकर्त्ता को अंत तक साहसपूर्वक जूझते उसने देखा। उसने अपने को ही बचाने की स्वार्थी भावना को छोड़कर पिता की चेतावनी की अवहेलना करते हुए अध्यापक की नौकरी छोड़कर बुराकुमिन जाति के दोस्त के साथ रहने के लिए रवाना हुआ जो कि अमेरिका में रहता था।

तोसोन् ने जापान की भेदभाव प्रथा को उपन्यास की पृष्ठभूमि में रखकर समाज और अहम्, बाह्य यथार्थ के और मन की सच्चाई के परस्पर संघर्ष को दिखाकर अन्त में दोनों का समन्वय करके आधुनिक यथार्थवादी की रचना की।

इस युग के और एक लेखक काताइ तायामाने अपने अन्तर के रूढ़िवाद तोड़ने के लिए उपन्यास में अपने अनुभव सीधा बताने का तरीका अपनाया। "फुतोन" ("रजाई" 1908) में उसने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया कि जो एक जाने-माने साहित्यकार के क्लेश (जिसके पत्नी और बच्चे भी थे परन्तु फिर भी वह अपनी शिष्या से शारीरिक कामना करता था।) को सीधा उपन्यास में प्रस्तुत किया। लेखक ने बाह्य व्यवहार और यश पाने पर जोर देने वाले समाज में अपनी मानसिक लज्जा को सब लोगों के सामने व्यक्त किया। अपनी व्यक्तिगत सच्ची भावना को प्रकट करना उसके नये साहित्य का सिद्धान्त था।

इस उपन्यास ने अन्य साहित्यकारों को बहुत प्रभावित किया। क्योंकि अब तक साहित्यकार जापानी समाज-व्यवस्था को ही देखते थे और अपनी आन्तरिक समस्याओं को नहीं देखते थे। साहित्य कोई खेल अथवा मनोरंजन नहीं, बल्कि वह यथार्थ को यथार्थपूर्ण दृष्टि से खोजने का एक गम्भीर विज्ञान है और अपने मन को धोखा न देखकर जीवन-क्षेत्र और अनुभवों को व्यक्त करने का नीतिपूर्ण क्षेत्र हैं।

काताइ के साहित्यिक सिद्धान्त से प्रभावित तोसोन ने अपने यौवन युग के अनुभवों को "हारु" ("बसंत" 1908) में व्यक्त किया और जापानी सामंती प्रथा का प्रतीक—परिवार प्रथा को "काज़ोकु" (परिवार" 1910) में व्यक्त किया जिसमें अपने परिवार के पतन का इतिहास चित्रित किया गया है। इसके बाद परिवार के रक्त-सम्बन्धी डर एवं पाप की भावनाओं को "साइसेइ" ("द्विज" 1918) में अभिव्यक्त किया जिसमें भतीजी से प्रेम करने के अपने अनुभव का चित्रण है। 1929 में उन्होंने मेइजि क्रांति का इतिहास और अपने घर के पतन के इतिहास का समन्वय करके उपन्यास "योआकेमाए" ("भोर") लिखा।

इधर काताइ ने भी "सेइ" ("जीना" 1908) "त्सुमा" ("पत्नी" 1909) "शुकुमेइ" ("भाग्य" 1910) में अपने से सम्बन्धित परिवार प्रथा के अनुभव और विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने "इनाका क्योशि" ("देहाती अध्यापक" 1909) में बड़े महत्वाकांक्षी होते हुए भी अपने परिवार के पतन के कारण देहाती स्कूल का अध्यापक बन गये एक युवक की जिन्दगी का चित्रण किया। नायक अपना सपना टूट जाने से निराशा होकर दुखी जीवन व्यतीत करता था और उस दुखी जीवन से मुक्त होने का प्रयास भी करता रहा परन्तु बीमार होकर नितांत अकेलेपन में नायक मर जाता है। दूसरी ओर जापान-रूस महायुद्ध में जापान के विजय की खुशी में जनता बाहर निकलकर जय-जयकार करती थीं। इस उल्लासमय जय-जयकार को अकेले घर में सुनते निराश एवं गरीब नवयुवक की मृत्यु के दृश्य ने इस युग के जापान और इसके बाद के जापान के बिगड़े हुए आधुनिकीकरण को प्रतीकात्मक और संकेतमय ढंग से अभिव्यक्त किया है।

काताइ तायामा से प्रारम्भ हुआ नयी साहित्य धारा की प्रवृत्ति अपने अनुभवों के अनुसार अपने अन्तर में छिपी हुई कपटी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति करना है। उसमें चाहे नायक उत्तम पुरुष सर्वनाम से व्यक्त किया गया

Scanned with CamScanner

हो, चाहे अन्य पुरुष सर्वनाम से व्यक्त किया गया हो, उसे निजी उपन्यास कहा गया है। उसके बाद निजी उपन्यास जापानी साहित्य की मुख्य धारा बन गई है। निजी उपन्यासों में अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति पर अधिक बल देने के कारण कथानकता की कमी भी होती है। इस युग के प्रकृतिवादी निजी उपन्यासकारों में ऊपर दिये गए लेखकों के अलावा शुमेइ तोकुदा एवं होमेइ इवानो भी प्रसिद्ध हैं। शुमेइ ने "काबि" ("गेरुई" 1911) आदि में अपने गरीब जीवन को निश्चल निरीक्षक की नज़र की तरह देखकर ठीक ढंग से और विस्तार से व्यक्त किया है। उधर होमेइ एक क्षण के उपभोग के द्वारा नित्य आत्मा की खोज को साहित्य का लक्ष्य मानते थे और इस युग की नैतिकता को तोड़ने की लालसा उसके पास थी और इस नैतिकता को तोड़ने के लिए अमल करते हुए उसने अपने अनुभवों को उपन्यास में लिख डाला। "होरो" ("घुमक्कड़" 1910) और "दोकुओ नोमु ओन्ना" ("विष पीने की महिला" 1914) में उसने कम्पनी खोलने में असफल होने के कारण अपने दोस्तों के पैसे मारते हुए घूमते तामुरा नामक नायक का चित्रण किया। नायक का व्यवहार स्वयं लेखक का अनुभव है। आर्थिक विफलता के कारण प्रेमी-प्रेमिका में प्रेम भावना लुप्त हो जाती है और दोनों में सिर्फ घृणा की भावना ही बचे रहने पर भी उन लोगों ने एक साथ मरने की योजना बनाई। इस प्रकार की नैतिकता विहीन कहानी को लेखक ने लिखते हुए अपने स्वयं के नैतिकताविहीन जीवन में अपनी नैतिकता की खोज की। इसके उपन्यास एवं व्यवहार से प्रभावित होकर निजी उपन्यासकारों में से कुछ लोगों ने एक दल की स्थापना की। इस दल के लोगों को विध्वंस शाखा अथवा बदमाश शाखा के उपन्यासकार कहते हैं।

इसके अतिरिक्त किसान साहित्य में भी एक नया उपन्यासकार सामने आया। उसका नाम था ताकाशि नागात्सुका। उसने "त्सुचि" ("मिट्टी" 1910) में किसान-मजदूर परिवार के गरीब जीवन और गरीब होने की वजह से परिवार के सदस्यों में पैदा हुए लालच, धूर्तता, स्वार्थ को प्राकृतिक वातावरण, ऋतु के परिवर्तन, गाँवों के त्यौहारों आदि के चित्रण के साथ-साथ यथार्थपूर्ण दृष्टि से चित्रित किया।

●●●●●

1910 में सम्राट की हत्या की योजना बनाने की शक में समाजवादी विचारक शूसुइ कोतोकु आदि समाजवादी व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और अगले वर्ष गुप्त अदालतों द्वारा उन्हें फाँसी की सजा दी गयी। जापानी सरकार ने उस घटना के बाद समाजवादी विचारकों, लेखकों, सम्पादकों का अपनी पुलिस-शक्ति से दमन किया।

प्रकृतिवादी साहित्यकारों ने अंधविश्वास, बुरे रिवाजों की परत को उधेड़ कर सच्चे यथार्थ का चित्रण करने का आन्दोलन चलाया। विशेष रूप से उन लोगों ने जापानी परिवार प्रथा तोड़ने का प्रयास किया। पर उन्हें इस युग के सामंतवादी यथार्थ, अमानवतावादी विवेकहीन यथार्थ से सामना करना पड़ा। जापानी परिवार प्रथा के सामंतवादी रीति-रिवाज के घेरे में अब तक व्यक्ति कितना उत्पीड़ित था, जिसे उपन्यास में अभिव्यक्त करना उन लेखकों का मुख्य विषय रहा। अर्थात् उन लोगों की रुचि परिवार प्रथा के आधार पर स्थापित जापानी समाज व्यवस्था राजनीति, और सत्ता की शक्ति की आलोचना करने में एवं संघर्ष करने में लग गई। इस युग की जापानी सरकार ने जापानी राष्ट्रीय व्यवस्था परिवार प्रथा की तरह स्थापित करने को सोचा अर्थात् सम्राट को देश का पिता समझने का विचार। इसलिए जो लोग परिवार प्रथा की आलोचना करता हो उसे खतरनाक आदमी समझा जाता था। इसी दृष्टि से प्रकृतिवादी साहित्यकारों को भी जापानी समाज के लिए खतरनाक व्यक्ति समझा जाता था। इस प्रकार की परिस्थति में जापानी सरकार ने कई कलाकार, साहित्यकार, समाजवादी, साम्यवादियों का दमन किया। इस दमन से प्रकृतिवादी साहित्यकार घबरा गंए। उन लोगों की नज़र राजनीति और समाज से भागकर अपने आसपास के जीवन के सीमित क्षेत्र में ही रह गई। उन लोगों के पास जापानी समाज व्यवस्था के प्रति विरोध की जो भावना थी वह अब नष्ट हो चुकी थी और उनके पास अब सिर्फ यथार्थपूर्ण दृष्टि से लिखने की विधि ही बची थी। उन लोगों की नज़र केवल सतही रह गयी थी। उन लोगों का अपना दर्शन नहीं था।

Scanned with CamScanner

सम्राट की हत्या के षड्यंत्र के आरोप में फाँसी पर लटकाये कोताकु शूसुइ के सम्बन्ध में रोका तोकुतोमि ने सत्ता की तीव्र आलोचना की थी, परन्तु प्रकृतिवादी उपन्यासकारों का प्रतिनिधि काताइ तायामा बौद्ध के धार्मिक जीवन दर्शन में डूबने लगा। उनके अनुसार साहित्यकार राजनीति अथवा समाज का परिवर्तन करने वाला नहीं है, साहित्यकारों को सिर्फ साहित्य के क्षेत्र में ही रहना चाहिए। सक्रिय साहित्यिक आन्दोलन के रूप में प्रारम्भ हुआ प्रकृतिवादी साहित्य इस वक्त असफल हो गया। लेकिन प्रकृतिवादी विचार, विधि, शैली का अब भी जापानी साहित्य पर गहरा प्रभाव है और साथ ही असफलतावाद का भी।

प्रकृतिवादी आन्दोलन के बाद गैर प्रकृतिवादी साहित्य उभर आया ह्रास और सौन्दर्य शास्त्रवादी साहित्य। फ्रेंच उपन्यासकार E. Zola से प्रभावित होकर काफू नागाइ "जिगोकु नो हाना" ("नरक का फूल" 1902) लिखकर प्रकृतिवादी साहित्य में प्रसिद्ध हो गया था परन्तु 1903 से 1908 तक पाश्चात्य देशों में रहते समय उसके साहित्यिक विचार रहस्यवाद की ओर मुड़ गये और वह गैर प्रकृतिवादी बन गया। उसने विदेश में रहने के अपने अनुभवों को सुन्दर काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर "अमेरिका मोनोगातारि" ("अमेरिकी कथा" 1908) और "फुरान्सु मोनोगातारि" ("फ्रेंच कथा" 1901) प्रकाशित किये। वह बुनियादी तौर पर सभ्यता आलोचक था। उसने मूल पाश्चात्य सभ्यता देखकर जापान में आयातित आधुनिक सभ्यता की भिन्नता को महसूस किया। उसका विचार था कि जापानी साहित्यकारों की रास्ता अवहेलना किये गये पूर्व युग के साहित्य में खोजना चाहिए। और अपने को समाज से भागने वाले साहित्यकार समझकर वेश्याघर आदि जाते रहे और वहाँ रहने वाली महिलाओं के सौन्दर्य को Nihilism की दृष्टि से "सुमिदा गावा" ("सुमिदा नदी" 1909) आदि में अभिव्यक्त किया। यह जापान की आधुनिकता के प्रति उनकी निराशा की भावना थी।

सौन्दर्य शास्त्रवादी लेखकों में जुन्इचिरो तानिजाकि का नाम सबसे पहले आता है। उन्होंने "इरेजुमि" ("गोदना" 1910) में वासनामय सौन्दर्य की दुनिया का चित्रण किया। यह एक प्रसिद्ध गोदनकार द्वारा सुन्दर लड़की की पीठ भर पर मकड़ी का चित्र गोदने की कहानी है। इसमें नायक द्वारा नायिका के शरीर पर सुई लगाने से उत्पन्न परपीड़न-रति भावना और नायिका की सेवा करने की भावना का मिश्रित आनन्द और नायिका के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन जो सुई लगवाने से उत्पन्न दर्द बाद में अपने शरीर पर काम करवाने के सुख में परिवर्तित हो जाता है, के विषय में लिखा गया है। नायिका के मन में स्त्रीत्व की भावना पैदा होने से दोष, पाप भी माफ करने की भावना पैदा हो जाती है, जुन्इचिरो ने इसके बाद भी स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध और स्त्री-शरीर पूजावाद की भावनाओं से उत्पन्न Masochism को अपने साहित्य का आधार बनाकर उससे उत्पन्न हुए सौन्दर्य, शारीरिक आनन्द आदि को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति किया। अतः उसने सौन्दर्य एवं शारीरिक आनन्द (रति-आनन्द) मिश्रित साहित्यिक दुनिया की स्थापना की और उनके साहित्य का अंत में मृत्यु एवं सेक्स की खोज की चरमसीमा तक पहुँचना भी अनिवार्य था।

इस युग में और एक नया साहित्यकार मंच पर आया। उसका नाम था सानेआत्सु मुशानोकाजि। वह पूर्व युग के आशाहीन प्रकृतिवाद के विपरीत आशापूर्ण आदर्शवाद को मानता था। ऐसे आदर्शवादी लेखकों के समुदाय को शिराकाबा हा (सफेद भोजवृक्ष शाखा) नाम से पुकारा जाता है। इस शाखा में साहित्यकार राज-परिवार, उच्च वर्ग आदि से सम्बन्धित लोग थे जो उच्च वर्ग के लोगों के विश्वविद्यालय (गाकुशूइन विश्वविद्यालय) के छात्र थे। उन लोगों के पास किसी चीज की कमी न थी। वे पाश्चात्य देशों की संस्कृति को बिना सोचे सीखकर मानव की दया, दोस्ती को सबसे सुन्दर वस्तु समझने वाले नवयुवक थे। इसलिए समाज के प्रति उन लोगों के पास आशावादी विचार एवं आदर्शवादी दृष्टि थी और वे लोग Tolstoi के मानवतावाद में भी विश्वास करते थे। सानेआत्सु मुशानोकोजि "ओमेदेताकि हिको" ("सुखी आदमी" 1912), "सेकेन्शिराजु" ("अनुभवहीन आदमी" 1913) आदि में अपने प्रेम-मैत्री के सुख-दुख के द्वारा अहम्वादी दृष्टिकोण को आशापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करके शिराकाबा हा का

Scanned with CamScanner

नेता बन गया। दूसरे साहित्यकारों के समान उसने भी साहित्य और अमल की एकता की कोशिश की। उसने अपने आशावादी आदर्शवादी विचारों के राम-राज्य की कल्पना को साकार करने के लिए एक "नया गाँव" ("अतारशिकि मुरा") की स्थापना की। अमीर वर्ग के आदमी का राम-राज्य यथार्थ के समाज में सफल होना असम्भव ही था, परन्तु उसने इसे असफलता न मानकर अंत समय तक इस गाँव की रक्षा की थी।

इस शाख के दूसरे लेखक नाओया शिगा ने अपनी भावनाओं को सच्ची भावना मानकर साहित्य द्वारा अपने जीवन खोजने का प्रयास किया यह एक तरह का अहम्वादी दृष्टिकोण है परन्तु उसने सुडौल कहानियाँ एवं उपन्यास लिखे। इन मानवतावादी लेखकों की शाखा में ताकेओ आरिशिमा का साहित्य पढ़ने योग्य है। वह अपनी शाखा की कमजोरी और सीमा जानता था। इसलिए वह यथार्थ से सामना नहीं करता था, बल्कि उसने यथार्थ को पार करने की कोशिश की। वह बौद्ध धर्म छोड़कर ईसाई धर्म मानने लगा। वह Whitman, Ibsen, Tolstoi से प्रभावित होते हुए Kroptkin के अराजकतावाद के निकट तक आया। उसके "आरु ओन्ना" ("एक महिला" 1911) में एक महिला के जागरण एवं इसके जीवन के पतन को यथार्थपूर्ण दृष्टि से उसने चित्रित किया। मिशानरी स्कूल में पढ़ी नायिका ने उच्च वर्ग के रीति-रिवाजों को तोड़ने की कोशिश की परन्तु इसके फलस्वरूप उसे काफी कष्ट उठाना पड़ा अंत में नीच वर्ग के आदमी के साथ शारीरिक सम्बन्ध होने से उसके आदर्शपूर्ण जीवन का पतन होता है। अपने को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य पहले भी था परन्तु महिलाओं के अस्तित्व को लेकर लिखा गया साहित्य इस युग तक बहुत कम लिखा गया। शिराकाबा शाखा के लेखकों ने अमीर या उच्च वर्ग के परिवार होने के नाते किसान मछुओं, मजदूरों की जिन्दगी का चित्रण नहीं किया पर उसने "उमारे इजुरु नायामि" ("जन्म होने की चिंता" 1918) "चिइसाकि मोनो ए" ("बच्चे को" 1918) में उन लोगों की जिन्दगी को सहानुभूति के साथ चित्रित किया। इन रचनाओं के द्वारा उसका विचार अहम्वाद से समाजवाद, आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर होकर अंत में अराजकतावाद तक आया। परिणामतः उसने अपनी सारी जमीन खेती मजदूरों को बाँट दी। यह व्यवहार मुशानोकोजि के राम राज्य निर्माण के विपरीत एक आशाहीन क्रिया थी। अपनी सारी जमीन बाँटने के बाद भी उसका मन सुख नहीं मिला। वह उच्च वर्ग को नष्ट नहीं कर सकता था, उच्च वर्ग की नीति को नष्ट नहीं कर सकता था इन तरह के विचारों से पाप की भावना पैदा हो जाती थी, उसके मन में। आखिर 45 वर्ष की आयु में उसने अपनी प्रेमिका के साथ आत्महत्या कर ली।

अगर शिराकाबा शाखा के सानेआत्शु मुशानोकोजि एवं नाओया शिगा को यथार्थ और अपने विचारों के समन्वय के साहित्यकार कहें, तो ज़ेंज़ो कासाइ अपने विचार और यथार्थ के अन्तर को साहित्य का आधार बनाकर लिखने का विध्वंस का साहित्यकार था। उसने स्वयं अपना गाँव छोड़कर शहरों में घूमते गुंडे का जीवन व्यतीत किया और उन अनुभवों को सीधा उपन्यास में लिख डाला। उसके उपन्यास "कोओ त्सुरेते" ("बच्चे को लेकर" 1918) "शिइ नो वाकावा" ("Pasania का पत्ता" 1924) "कोहान नो शुकि" ("झील के तीर पर डायरी" 1924) हैं। उसका सिद्धान्त था कि साहित्य अपने जीवन के संकट को लिखना है। इसलिए लिखने के लिए अपने जीवन को संकट में डालना उसकी जिन्दगी थी।

इसके अलावा बुद्धिवादी अथवा नया कृत्रिमवादी साहित्यकारों का भी एक दल था। इस दल में प्रमुख थे र्यूनोसुके अकुतागावा। वह नीति को अवसरवाद एवं पाखण्ड की दूसरी संज्ञा मानते थे। उसका साहित्यिक सिद्धान्त था कि जीने का आधार शुद्ध रुचि से होता है।

उन्होंने "हाना" ("नाक" 1916), "इमोगायु" ("अरवी की खिचड़ी" 1916) आदि सरल, रोचक और बौद्धिक कहानियाँ लिखीं। उनकी सरलता, रोचकता और बौद्धिकता अब तक के आधुनिक साहित्य में नहीं मिली थीं। उनका जीवन जन्म से ही कष्टमय रहा। शायद यह इसी वजह से होगा कि उनका दृष्टिकोण निराशात्मक और संदेही होने के साथ संवेदनशील भी था। शहरी और शिक्षित होने के नाते उन्होंने अन्य लेखकों की तरह अपनी जिन्दगी को

Scanned with CamScanner

उपन्यास में सीधा अभिव्यक्त न करके अपने मन में दबा दिया। उन्होंने जापान और चीन के प्राचीन शास्त्र, ऐतिहासिक घटनाओं, कथाओं से विषय चुनकर आलोचनात्मक दृष्टि से रूपक सूत्रों का उपयोग करके उन्हें नये परिपेक्ष में डालकर कई कहानियाँ लिखीं। वास्तव में, उनका साहित्यिक दृष्टिकोण पश्चिमी ढंग की बौद्धिक कला के लिए कलावाद था, लेकिन अपने देश की निम्न स्तर की जनता का यथार्थ और अपनी बौद्धिक कृतियों में चित्रित पात्रों के जीवन में गहरे पाए गए अन्तर पर वे बाद में विचार करने लगे और अपने साहित्य को संदेहात्मक दृष्टि से देखने लगे। अत: वे अपने साहित्य का उद्देश्य भी खो गये थे। फिर भी साहित्य का उद्देश्य खोजते-खोजते उन्होंने अपने जीवन सम्बन्धी कई कहानियाँ लिखीं। उनकी रचनाएँ सब निराशावादी थीं। पर उन रचनाओं में भी उन्होंने अपने साहित्य का उद्देश्य नहीं देखा और अन्त में 35 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने आत्महत्या करके अपने को इस दुनिया से विदा ली।

आकुतागावा की आत्महत्या अपने आन्तरिक साहित्यिक सिद्धान्त के अनुसार की गई थी जो कि अपने जीवन का सिद्धान्त (कला के लिए जीना) के पतन के कारण उन्होंने इस दुनिया में अपने अस्तित्व को खो दिया। उनके लिए इस दुनिया में जीने का मतलब ही नहीं रहा था। उनकी मृत्यु एक साहित्यिक युग का अन्त भी था। प्रथम महायुद्ध के बाद हमारे देश के साहित्यिक जगत में कई साहित्यिक प्रवृत्तियां पैदा हुई थीं। उनकी मृत्यु के साथ उनका अन्त हो गया। इसके बाद दुनिया भर के इतिहास और जनवादी साहित्य जापानी साहित्यकारों पर तेज प्रभाव डालने वाले थे।

इससे पहले और कुछ जापानी साहित्यकारों के बारे में बताना उचित होगा।

●●●●●●

उपरिलिखित लेख से जापानी आधुनिक साहित्य के निर्माणकाल की प्रवृत्तियों की जानकारी कुछ प्राप्त हुई होगी। हमारे देश के साहित्य का इतिहास अपनी देशीय परम्परागत संस्कृति, मूल्यों और पाश्चात्य देशों से आयातित आधुनिक संस्कृति और मूल्यों के संघर्ष का इतिहास था, अर्थात् अधिकांश लेखक सामंती प्रथा, नीति के प्रति आधुनिक चेतनाओं को लेकर संघर्ष करते रहें। परन्तु कुछ साहित्यकार इस तरह के साहित्यिक आन्दोलन को संदेहात्मक और आलोचनात्मक दृष्टि से देखते थे। ओगाइ मोरि और सोसेकि नात्सुमे उन साहित्यकारों में प्रमुख थे। ये दोनों साहित्यकार हमारे देश के आधुनिक साहित्य के निर्माण काल में किसी भी दल या आन्दोलन में शामिल न होकर अपने देश की आधुनिकता पर आलोचनात्मक दृष्टि से कहानियाँ लिखते रहे थे।

ओगाइ मोरि तोक्यो विश्वविद्यालय से चिकित्सा शास्त्र का उपाधि प्राप्त करने के बाद 1884 से 88 तक पढ़ने के लिए जर्मनी गए। स्वदेश लौटने के बाद वह फौज में डाक्टर बन गये। 1890 में उन्होंने "माइहिमे" ("नर्तकी") नामक कहानी लिखकर साहित्य के मंच पर आए। यह राष्ट्र के निर्माणकाल में देश की ओर से जर्मनी भेजे गए एक नवयुवक की कहानी है। जर्मनी के उन्मुक्त जीवन के अनुभव से उसके मन में देश के प्रति अपने दायित्व को निभा पाने के कारण क्षोभ की भावना पैदा हो गई उस समय वह जर्मन नर्तकी के साथ प्रेम करने लगा था। अपने देश और अपने परिवार की प्रत्याशा के विपरीत वह जर्मन नर्तकी के साथ रहने लगा, फिर भी उसमें अपने देश के बन्धन तोड़ने की हिम्मत नहीं थी अत: वह नर्तकी को छोड़कर स्वदेश वापस आया। उसके जाने के बाद वह नर्तकी पागल हो गई थी और नायक के मन में भी इस पाप की भावना से गहरी चोट लगी। अपनी प्रेमिका को छोड़ने के पाप की भावना नायक की सफलता के साथ-साथ बढ़ जानी चाहिए थी। इस उपन्यास में मानसिक महत्व की उपेक्षा करके भौतिक प्रगति पर बल दिया गया उस जमाने के बुद्धिजीवियों के पाप की भावना को अभिव्यक्त किया गया। ओगाइ मोरि फौज के उच्च अधिकारी बनने के बाद राष्ट्रीय संग्रहालय के निदेशक भी बन गये थे साथ ही साहित्य की दुनिया में भी उन्हें यश मिला फिर भी उनकी मृत्यु के समय का अन्तिम शब्द यह था "व्यर्थ"। उन्होंने स्वर्गवास होने तक प्रकृति विज्ञान के शिक्षित तर्कणापरक प्रबोधक के रूप में, कभी आदर्शवादी के रूप में, कभी संदेहवादी के रूप में और बुनियादी तौर पर सत्ता पक्ष के रूढ़िवादी के रूप

Scanned with CamScanner

में अन्य जापानी साहित्यकारों को प्रभावित किया। उनके ही साहित्यिक जीवन में सबसे गम्भीर विषय यह रहा कि आधुनिक बुद्धिजीवियों की मानसिक शून्यता को किस प्रकार सुधारा जाए।

उन्होंने कई कहानियाँ लिखीं परन्तु उनके साहित्यिक जीवन के परवर्ती युग से वह "गोएमोन योत्सुया नो इशो" ("गोएमान योत्सुया नामक क्षत्रिय की वसीयत" 1912) "च्यूसाइ शिवुये" (1916) आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में डूब गये। उन्होंने ऐतिहासिक तत्वों की खोज करके देश के लिए अथवा तथ्य के लिए बलिदान दिया आम लोगों का चित्रण किया। उनका विचार था कि स्वार्थ लाभ के लिए किये गये पाश्चात्य देशों की सभ्यता के आयात ने जापान को उपयोगितावाद का देश बना दिया। अर्थात् जापानी लोगों के मन में स्वार्थ की भावना पैदा हो गई है। लेकिन सौ साल पहले के जापानी लोग केवल स्वार्थ लाभ उठाने के लिए नहीं जीते थे। जापानी लोगों की परम्परा में ही जापानी लोगों का सच्चा मार्ग होता है। यह उनका विचार था।

सोसेकि नात्सुमे का साहित्यिक विषय भी मानसिक शून्यता रहा। उन्होंने तोक्यो विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य पढ़ने के बाद 1900 से 1903 तक इंग्लैंड में पढ़ाई की और स्वदेश लौटने के बाद अंग्रेजी साहित्य के प्रवक्ता बन गये। 1905 में वे "वागाहाइ वा नेको दे आरु" ("मैं बिल्ली हूँ।") नामक कहानी लिखकर साहित्य के मंच पर आये। इसके बाद उन्होंने "कोकोरो" ("दिल" 1914) "मिचिकुसा" ("रास्ते में" 1915) "मेइआन" ("रोशनी और छाया" 1916) आदि चर्चित कहानियों को प्रकाशित किया। उनका विचार था कि इतनी कम अवधि में पाश्चात्य सभ्यता को आयातित करके जापान ने भौतिक प्रगति अवश्य की परन्तु इसके बदले बुद्धजीवियों के मन में मानसिक शून्यता पैदा हो गई। उन्होंने अपनी रचनाओं में इस प्रकार की आधुनिकता से उत्पन्न हुई बुद्धजीवियों की बाह्य भौतिक जिन्दगी और भावनाओं के अन्तर को अभिव्यक्त किया।

ओगाइ और सोसेकि ने जिस प्रकार के साहित्यिक विषय पर गम्भीरता से विचार किया उनका साहित्यिक विषय आज का साहित्यिक विषय भी रहा, यानी उसका समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। [क्रमशः]

हमारे प्रकाशन

एशियाई आधुनिक साहित्य माला

भारत : "अपना मोर्चा" काशीनाथ सिंह
अनुवादक : शिगेओ आराकि

इन्दोनेशिया : "अनन्त रास्ता" मोताफल लुबिस
अनुवादक : नोरिआकि ओशिकावा

ताइवान : "सायोनारा फिर मिलेंगे" ह्वान चुन मिन
अनुवादक : तानाका व फुकुदा

मनिला : "चमकता नाखुन" एडगर्ड लैएस
अनुवादक : मोतेए तेरामि

एशियाई आधुनिक साहित्य का अनुवाद एवं प्रकाशन

MEKONG CO., LTD

25-1, Hongo 1-Chome, Bunkyo-ku, TOKYO, JAPAN

Scanned with CamScanner

नया गाँव, नया लेखक : मिथिलेश्वर की कहानियाँ

आकिरा ताकाहाशि

प्रस्तावना

शहर के तनावपूर्ण तथा संघर्षमय जीवन से थके-माँदे लोग अपने मन में शांतिपूर्ण और स्नेहमय ग्रामीण जीवन की कल्पना किया करते हैं, जहाँ लोग एक-दूसरे से प्रेम से मिलते तथा बात करते हैं और मर्यादा तथा परम्परागत मूल्यों का पालन करने में कोई कसर नहीं रखते हैं।

शहर के निवासियों द्वारा 'गाँव' शब्द हमेशा अजीब किस्म के आकर्षण तथा मोह के साथ लिया जाता है। इस मामले में यह निबन्धकार भी अपवाद नहीं है, जिसने एक विदेशी होने के नाते भारतीय गाँवों की प्रत्यक्ष अनुभूतियों से वंचित रहने पर भी अपने मन में एक आदर्श भारतीय गाँव का सपना संजोये रखा है। राजधानी के जीवन के सम्बन्ध में निबन्धकार की ओर से कहने की कोई ऐसी नई बात न होगी, जिसको शहर निवासी पाठकों ने अभी तक नहीं झेला है।

इधर हर रोज़ ग्रामीण जीवन सम्बन्धी विभिन्न खबरें देखने-सुनने में आती हैं, जिनमें से कुछ हमारे इस सपने के लिए घातक सिद्ध होती हैं। यातनापूर्ण शहरी परिस्थिति से आहत होकर लोग गाँव की जिस शरण में आना चाहते हैं, उसकी नींव भी कभी-कभी लड़खड़ाती नज़र आती है। शहर वालों की आशा के विपरीत बुनियादी तौर पर जितनी तीव्रता से आजकल गाँव परिवर्तित हो रहा है, उतनी तीव्रता से शहर भी नहीं बदलता है। हालांकि अपरिवर्तनीयता ही प्राय: गाँव की सबसे बड़ी विशेषता समझी जाती है, जहाँ चिरकाल से भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न धारा बहती आ रही है।

इस निबन्ध में बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ में नये गाँवों के असली स्वरूप का, कहानीकार मिथिलेश्वर की रचनाओं के माध्यय से निरीक्षण करने का प्रयास किया गया है। निबन्धकार को अभी भारतीय गाँवों को अपनी आँखों से गहराई से देखने का सुअवसर नहीं मिला है, इसलिए इस निबन्ध में गाँव के जो कुछ दृश्य दर्शाये गये हैं, वे सब उनके द्वारा देखा गया तथा अनुभव किया गया 'सत्य' है। परन्तु साहित्य एक तरह से सर्वशक्तिमान् माध्यम हो सकता है, जिससे कि एकदम से चीज़ों के गहनतम तथा मौलिक स्तर तक पाठक पहुँच सकते हैं। निबन्धकार अपने आपको एक मामूली पाठक समझने पर भी दावे के साथ यह कहना चाह रहा है कि मिथिलेश्वर की कुछ कहानियों द्वारा हम सत्य के जितने नज़दीक आ सकते हैं, उतने अपनी आँखों से देखने पर शायद नहीं। इस सम्बन्ध में लेखक द्वारा चित्रित की गई एक लड़की का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है जो गाँव की महिलाओं पर रिसर्च करने के लिए गाँव आई थी। उसने कुछ महिलाओं से मिलने के बाद अपनी डायरी में नोट किया कि बदन दिखाने वाले आधुनिक फैशन से दूर, शहर की महिलाओं की अपेक्षा गाँव की महिलाएँ रहन-सहन और अपने व्यवहार में पूरी तरह लज्जाशील हैं। लेकिन शाम को सड़क के किनारे पर पाखाना करती हुई अनेक

Scanned with CamScanner

औरतों को देखकर उसने पहले लिखी हुई पंक्तियों को काटकर पुन: लिखा कि बदन दिखाने और निर्लज्जता के स्तर पर गांव की महिलाओं के सामने शहर की महिलाओं का कोई अस्तित्व नहीं ।1 उक्त उदाहरण के साथ इस पंक्ति के मिला देने से लेखक का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है ।

'प्लेटफॉर्म पर खड़े होकर गाँव नहीं देखा जा सकता'2 बदलते हुए ग्रामीण जीवन का मूल्यांकन करने के लिए जो बाहर से आते हैं, उन्हें जल्दबाज़ी और अज्ञान के कारण अनेक गलतफहमियाँ हो जाती हैं। मिथिलेश्वर ने अपने एक पात्र को यह कहलवा दिया है, जो शहर से आये हुए सज्जन को गाँव का परिचय दे रहा है, कि 'आज के गाँव की सच्चाई क्या है, यह अब गाँव के भीतर घुसने पर आपको पता चलेगा, क्योंकि अभी तक गाँव का सिर्फ बाहरी परिचय ही मैंने आपको दिया है ।'3 हमारे लिए कोई ऐसा पथदर्शक नहीं है जिसके अनुसार हम गाँव के भीतर घुस सकें और अगर कोई मिल जाए, तो भी वह ज्यादा से ज्यादा हमें दरवाज़े के सामने तक ले जाकर छोड़ देगा। परन्तु मिथिलेश्वर की कहानियाँ हमें घरों के अन्दर तक और ग्रामवासियों के हृदय के भीतर तक ले जाती हैं ।

I. यथार्थ की पहिचान

गाँव के असली रूपों तथा स्थितियों का चित्रण करना उन लेखकों की ही सामर्थ्य की बात है जो गाँव में पले-बढ़े हैं और चीज़ों का तटस्थ दृष्टि से निरीक्षण करने की क्षमता रखते हैं। यहाँ तटस्थ होने का अभिप्राय यह नहीं है कि अखबारनवीसों की तरह जो देखा और सुना जाता है, उसको फोटो समेत दुहरा दे। लेखक के चारों तरफ़ जो घटनाएँ घटित हुआ करती हैं, उन्हें तटस्थ दृष्टि से देख लेना उतना मुश्किल नहीं जितना प्राय: समझा जाता है। परन्तु उन घटनाओं समेत उस अपने आप पर भी तटस्थ निगाहें डाल देना आसान नहीं है, जिससे वे घटनाएँ देखी तथा सुनी जाती हैं। तटस्थ दृष्टि से निरीक्षण करने का मतलब अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता की उपेक्षा न होकर उसकी सही पहिचान करना है जिससे कि स्थितियों का भी सही अंदाजा लगाया जा सकता है। अखबारनवीसों की तटस्थता इसी उपेक्षा पर आधारित होती है। आत्म-निरीक्षण द्वारा घटनाओं तथा अपने आपके बीच की दूरी को नापने में जो लेखक असमर्थ होते हैं, वे अपनी रचना में पात्रों तथा अपने बीच की आवश्यक दूरी भी नहीं रख सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप पात्रों से अधिक लेखक खुद बोलने लगते हैं और परिस्थितियों की प्रासंगिकता की सरासर उपेक्षा की जाती है। जिस तरह यह कल्पनातीत बात है कि रंगमंच पर निर्देशक खुद चढ़कर और अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को हटाकर नाटक पढ़ना शुरू कर दे, उसी तरह पात्रों को चुप कराकर लेखक का खुद बोल देना हास्यास्पद जान पड़ता है। वहाँ साहित्यिक सृजन की बजाय व्यक्तिगत प्रदर्शन अधिक हो जाता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मोटी-मोटी रचना पढ़ने के उपरान्त भी पाठकों को लेखक की तस्वीर तथा आत्म-परिचय के अतिरिक्त कुछ भी याद नहीं रह जाता जो प्राय: किताबों के पृष्ठ-आवरण पर छपा हुआ मिलता है। साहित्यिक लेखन में लेखकों को दोहरे सृजन की कोशिश करनी पड़ती है, अर्थात् पात्रों तथा परिस्थितियों के सृजन के बाद उन सबको अपने-अपने अस्तित्व के सृजन के लिए स्वतन्त्रता प्रदान करनी पड़ती है, जिससे कि वे अपनी बात कर सकें और अपनी आवाज उठा सकें। परन्तु हिन्दी के कुछ लेखकों में प्राय: यह दोष पाया जाता लगता है कि वे पात्रों में जान फूँक देने की बजाय उनके शरीर में खुद अवतरित होकर मनमानी कर बैठते हैं। आत्म-निरीक्षण की कमी तथा अपने अहं को काबू में रखने की अक्षमता के कारण उन लेखकों की यथार्थ की पकड़ कमज़ोर पड़ जाती है। अगर यह सम्भव हो तो भी कोई आवश्यक नहीं है कि लेखक का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से तटस्थ हो। परन्तु साहित्य-लेखन में यह अवश्य घातक सिद्ध होगा कि यथार्थ की पहिचान में किसी 'वाद' या बँधी हुई विचारधारा और उससे अधिक अपने अहं की स्वच्छंदता के कारण शिथिलता आ जाए, जिस यथार्थ पहिचान के ठोस आधार पर ही उल्टे वह वाद या विचारधारा तथा अहं की सार्थकता कायम हो सकती है। अपने अहं की सही तथा सूक्ष्म पहिचान के बिना यथार्थ की पहिचान असम्भव-सी लगती है। यथार्थ कोई ऐसी चीज़ नहीं जो हाथ से छुई जा सके तथा आँखों से देखी जा

Scanned with CamScanner

सके, वह लेखक के आन्तरिक तथा बाह्य जगत् की सापेक्ष दूरी तथा आपसी सम्बन्ध की पहिचान का दूसरा नाम है। वह लेखक के अनुभवों का लक्ष्य न होकर खुद एक अनुभूति है जो लेखक तथा बाह्य जगत् के साक्षात्कार का परिणाम है। इसलिए जहाँ आत्म-निरीक्षण अपूर्ण तथा अधूरा रह जाता है, वहाँ यथार्थ की पकड़ भी अपूर्ण तथा अधूरी पड़ जाती है। हिन्दी साहित्यिक जगत् में जिस यथार्थवाद का जोर-शोर से आरम्भ हुआ था, वह स्पष्ट रूप से समाजवादी चेतना और समाज की प्रगतिशील शक्तियों की पहिचान पर आधारित था। परन्तु यथार्थ पहिचान के उस पहलू की तरफ ध्यान नहीं दिया गया है, जिसका ऊपर विवेचन किया जा चुका है। इसके परिणामस्वरूप अर्थात् आत्म-निरीक्षण के कमरतोड़ तथा चुनौती भरे प्रयास की उपेक्षा के परिणामस्वरूप यथार्थ-पहिचान, जिस पर ही देश-काल से परे हर प्रकार का श्रेष्ठ साहित्य आधारित होता है, एक वाद बनकर रह गया। कोई भी लेखक जो यथार्थ-पहिचान के इस पहलू से परिचित है, वह लगातार अपने आपको आत्म-निरीक्षण की सख्त कसौटी पर कसता है और अपने विचारों तथा अनुभवों को सार्थकता पर विवेचनात्मक दृष्टि डालता रहता है।

II. नया गाँव और मिथिलेश्वर की कहानियाँ

प्रतिष्ठित हो चुके लेखकों की आड़ से धीरे-धीरे उन जवान लेखकों के ताज़ा चेहरे भी दिखाई देने लगे हैं, जो खोखली पड़ गई यथार्थवाद की परम्परा को पुनर्जीवित करने में संलग्न हैं। इस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वालों में से आजकल मिथिलेश्वर का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। मिथिलेश्वर यथार्थ को आधुनिक गाँव तथा ग्रामीण जीवन के सन्दर्भ में जिस सच्चाई-तथा सजीवता के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, वह आजकल इने-गिने लेखकों में ही पायी जा सकती है। हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिए यहाँ मिथिलेश्वर का सविस्तार परिचय देने की आवश्यकता न होगी। परन्तु यह निबन्ध उन जापानी लोगों को भी लक्ष्य करके लिखा गया है, जो हर सम्भव माध्यम से भारत को समझने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिए नीचे संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, जो लेखक की दूसरी कहानी संग्रह 'बन्द रास्तों के बीच' में दिया गया है।

जन्म : 27, अक्टूबर, 1948, बिहार के भोजपुर जिले के बैसाडीह नामक गाँव में। संप्रति : महाराजा हाता कातिरा, आरा में जीविकोपार्जन में संघर्षरत। दिसम्बर 1976 में 'बाबू जी' नामक प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित।

'बाबू जी' के बाद अब तक उनके छः कहानी-संग्रह और दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही उनकी अनेक कहानियाँ तरह-तरह की पत्रिकाओं में छपती आ रही हैं। इस बीच 'बाबू जी' कहानी-संग्रह मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा भारतीय गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार से पुरस्कृत व सम्मानित हो चुका है। आज जब, जहाँ ग्रामीण कथा-साहित्य की गम्भीर चर्चा की जाती है, तब, वहाँ हमेशा मिथिलेश्वर की किसी-न-किसी रचना की गर्मागर्म चर्चा भी की जाती नजर आती है।

अपने गाँव बैसाडीह के सम्बन्ध में उन्होंने एक जगह पर लिखा है, 'मैं आपको बता दूँ, मेरा जन्म भोजपुर जिले के एक ऐसे इलाके में हुआ है जो चोरी-डकैती, लूटपाट मनमानी और ज्यादती को लेकर पूरे जिले में मशहूर है। इस इलाके में कोई भी बात जो पहले लाठी के सहारे तय की जाती थी, अब बन्दूक की नोक पर तय की जाती है।'4 गाँवों में परिवर्तन लाठी से बन्दूक का ही नहीं, ग्रामीण जीवन के हर क्षेत्र में घोर परिवर्तन होते साफ़-साफ़ दिखाई देते हैं। शहर में बैठकर गाँव को आदर्श मानने की कल्पना करने वालों को चेतावनी देते हुए मिथिलेश्वर लिखते हैं, 'बुरा मत मानिएगा भाई साहब, आप लोग अपने दिमाग में गांव का जो नक्शा लेकर आते हैं, वह आज से सौ साल पहले का गांव होता है। आज के अनुपात में बिल्कुल काल्पनिक और रोमनी।'5 गाँव में तेज़ी से हो रहे नगरीकरण के बारे में भी लेखक एक ही आदमी से कहलवा देते हैं, 'अब शहर की वे तमाम ऊपरिया चीजें गाँवों में भी आ गयी हैं, जैसे—सिगरेट, शराब, चाय, पान, हिप्पी-कट बाल, बेलबॉटम पैंट, नाभिदर्शना साड़ियाँ, मिनी स्कार्ट, छुरेबाज़ी और चलती-फिरती प्रेम-कहानियाँ।'6 इन परिवर्तनों के अतिरिक्त यह भी कम महत्वपूर्ण

Scanned with CamScanner

परिवर्तन नहीं है कि गाँवों में नयी पीढ़ी के अनेक कथाकारों का आगमन हो रहा है, जिनका प्रतिनिधित्व मिथिलेश्वर करते जान पड़ते हैं।

आगे लेखक द्वारा अपनायी गई चरित्र-चित्रण की दो शैलियों का विवेचन किया जाएगा। जीते-जागते व्यक्ति को अपने संदर्भों के साथ पाठकों के सामने ज्यों का त्यों ला खड़ा कर देना लेखक के चरित्र-चित्रण की प्रमुख विशेषता है। नीचे कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिनसे पता चलता है कि लेखक के साहित्य-लेखन के साथ इस शैली का कितना गहरा सम्बन्ध है। "तब आप मेरे ऊपर कहानी क्यों लिख रहे हैं? हो सकता है, कहानी में मेरा सही रूप न आ सके। मुझे ही वहाँ भेज दीजिए। मैं पुरस्कार लेता आऊँगा।" विग्रह बाबू की इस बात से मैं कट कर रह गया था। उनकी इस बात का गहरा असर मेरे ऊपर पड़ा था। महीनों मुझसे कुछ भी लिखा नहीं गया था। आज भी जब मैं कोई कहानी लिखने बैठता हूँ, विग्रह बाबू की यह बात मेरे दिमाग में गूँजने लगती है।'7 'वह सोचता है, क्यों न कल वह स्वयं इलाहाबाद चला जाय और संपादक महोदय के सामने जाकर कहे कि मैं एक बहुत बढ़िया कहानी हूँ। मुझे पुरस्कार दे दीजिए। कागज़ पर शायद मैं अच्छी तरह नहीं उतार सकता था, इसलिए स्वयं आपके पास चला आया।'8 जब-जब लेखक अपनी इस शैली का सफल प्रयोग करते हैं, तब हमेशा आकर्षक तथा प्रभविष्णु व्यक्तित्व के सृजन में भी वे सफल होते हैं। 'नरेश बहू', 'रात अभी बाकी है', 'न चाहते हुए भी', 'बीच रास्ते में', 'विग्रह बाबू', 'अभी भी' इन कहानियों के नाम इस शैली के सफल उदाहरणों के रूप में गिने जा सकते हैं। उनमें हर एक पात्र अपनी बात करता तथा अपनी साँस लेता दृष्टिगोचर होता है। मिथिलेश्वर की कहानियों का यह अद्‌भुत गुण किसी संयोग से उन्हें प्राप्त नहीं हुआ है। सिर्फ़ गाँव में पैदा होने भर से कोई लेखक अंच्छी ग्राम कथाएँ नहीं लिख सकता। गाँव वालों तथा उनके जीवन के साथ मानसिक तादात्मय बनाये रखना अत्यावश्यक है। मिथिलेश्वर प्रथम कहानी संग्रह 'बाबू जी' की भूमिका में लिखते हैं, 'मेरे गाँव के वे लोग जिनके साथ मैं पला-बढ़ा हूँ और इस उम्र तक पहुँचा हूँ, वे मेरी कहानियों के प्रथम पाठक हैं। पाण्डुलिपि उन्हें सुनाकर उनकी स्वीकृति के बाद ही मैं कहीं प्रकाशनार्थ भेजता हूँ। उनके साथ बाढ़ में डूबते, अकाल में छटपटाते, बीमारी से कराहते, मँहगाई से आक्रांत तथा इसी तरह ज़िन्दगी की तमाम विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए मेरी दिनचर्या खत्म होती है।'9 वे आगे अपने कहानी-लेखन के मर्म पर भी प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, 'मेरी नंगी छोटी बच्ची जब मुझसे जाँघिये की माँग करती है और मैं अपनी जेब खाली पाता हूँ, मेरी कहानियाँ तभी जन्म लेती हैं।..... अपमानबोध से बुरी तरह ग्रसित मैं रातभर सो नहीं पाता हूँ। मेरी कहानियाँ उसी रात जन्म लेती हैं। पत्नी की माँगों को नज़रअंदाज़ करते बच्चों की आवश्यक इच्छाओं का हनन करते, रोज़गार दफ्तर से लौटते छोटे भाइयों के चेहरों की निराशा को पढ़ते मैं सुबह को शाम में बदल देता है।.....फिर बाबू जी की मृत्यु से लेकर अपनी छोटी बच्ची की मृत्यु तक यातनादायी सिलसिले मेरी आँखों के सामने से गुज़रने लगते हैं। बस, तभी मेरी कलम दनादन कहानियाँ उगलने लगती हैं।'10 अपने गाँव तथा ग्रामीण साथियों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और आत्मीयता की भावना का अनुमान भी उपर्युक्त उद्धरणों से किया जा सकता है। गाँववालों का दुख और दर्द लेखक का अपना अनुभव किया हुआ दुख तथा दर्द है। उनके दुख और अपने दुख में मिथिलेश्वर कोई भेद नहीं मानते हैं। कष्टदायक चीज़ों से कतराना मनुष्य के लिए स्वाभाविक ही है और लोग उन चीज़ों की अनदेखी करने से पीड़ाओं से सुरक्षित रहने की कोशिश करते हैं। इस देश की घोर विसंगतियों तथा अंतर्विरोधों को जानने के लिए मोटे-मोटे शोध ग्रंथों तथा विभिन्न आँकड़ों में सिर खपाने की आवश्यकता नहीं है। जिस जगह पर इस वक्त हम खड़े या बैठे हैं, उसके बगल में कोई-न-कोई विसंगति तथा अंतर्विरोध किसी-न-किसी आदमी के रूप में दिखाई दे सकता है। केवल हमारी निगाहों के पड़ने भर की देर है, अगर हम उस पर निगाहें डालेंगे तो। इस देश की हर गली व कूँचे में हमारी निगाहों की प्रतीक्षा करते मनुष्य छटपटा रहे हैं। परन्तु हम उनकी उपेक्षा करने के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि वे पहले से हैं ही नहीं। अब हमारा यह सिद्धान्त बन गया जान पड़ता है कि जो दिखाई नहीं देता है, वह वास्तव में नहीं है। हम आँखें मूँदे और नाक दबाए आराम से बैठ लेते हैं कूड़ाखाने के बीच में। जो कोई कूड़ाखाने की

Scanned with CamScanner

सफ़ाई करने लगे, तो उठती हुई बदबू तथा धूल से घबराकर हम उस पर गुस्सा करेंगे कि क्यों गन्दा कर रहे हो। जिसकी आँखें खुल गई हैं और जिसका हाथ नाक से हट गया है, उसको अपने चारों ओर की गन्दगी को देखना तथा सूँघना पड़ता है, जो कि हर अच्छे साहित्यकार की किस्मत में बदा है।

कहानी 'रात अभी बाकी है' में लेखक की इस संवेदनशीलता तथा यथार्थ-पहिचान का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। बूढ़े निझावन के घर में एक दिन भी ऐसा नहीं गुजरता है कि उनके पाँच पुत्रों के बीच घर के खर्च को कोई-न-कोई तकरार तथा हाथापाई न हो। परन्तु निझावन हर लड़के की अपनी-अपनी विवशता को देखते हुए किसी को भी दोषी नहीं ठहरा सकता है। अपने सब लड़कों को निर्दोष पाने के बाद वह यह सोचने को विवश हो जाता है कि अगर उनका कोई कसूर न हो, तो आखिर इस नरकमयी जिन्दगी का कौन जिम्मेदार है। सत्रह साल पहले जब गाँव में पड़े भीषण अकाल के कारण वह परिवार के साथ बाहर भाग चला गया, तब एक साहब के यहाँ मेहनत करते-करते एक दिन सड़क पर उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इकलौती जवान लड़की सोनिया को गर्भवती हुई देखकर भी उसकी विवशता का विचार आने पर निझावन का गुस्सा दया में बदल जाता है। उस की बहुएँ मन में चाहती हैं कि निझावन जल्दी मर जाए और घर का खर्च कम हो जाए। परन्तु निझावन उनमें भी दोष नहीं देख पाता है। उसके बड़े लड़के का गम्भीर रूप से बीमार पड़ जाने पर इलाज के लिए कर्ज़ में आये हुए पच्चीस रुपये को सबसे छोटे लड़के मोती द्वारा चुराये गये पैसा समझकर पुलिस ले चली जाती है। उसके तुरन्त बाद बड़े लड़के की मृत्यु हो जाती है। कहानी का अन्त इस प्रकार है, 'और फिर निझावन के रोते ही चीख-चिल्लाहट और रुलाई की आवाज़ों से पूरा घर काँपने लगता है। लाठी टेकते हुए निझावन आंगन में आया है। फिर बूढ़ी आँखों से आकाश की ओर ताकता है। उसे साफ़ महसूस होता है, रात अभी बाकी है।'11

लेखक ने इस कहानी में किसी भी चीज़ को छिपाने की कोशिश नहीं की है और साथ ही किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति तथा नाटकीयता लाने की कोशिश भी नहीं की है। उन्होंने गाँव के गरीबों के घर में जो हुआ करता है उसको वैसे ही अंकित किया है। लेखक की सहानुभूति तथा भावुकता ने अपनी निरीक्षात्मक दृष्टि पर कोई अड़चन नहीं डाली है। लेखक के दिमाग की सृष्टि होने पर भी इस कहानी में चित्रित स्थितियाँ वास्तविकता से अधिक वास्तविक लगती हैं।

पहले यह कहा जा चुका है कि मिथिलेश्वर की कहानियों को चरित्र-चित्रण की शैली की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। उनमें से एक वर्ग का प्रतिनिधित्व 'रात अभी बाकी है', 'विग्रह बाबू' आदि कहानियाँ करती हैं। वे ठोस-यथार्थ-पहिचान और लेखक की संतुलित व वस्तुनिष्ठ दृष्टि पर आधारित हैं और उन कहानियों में ऊपर से आदर्श को थोप देने तथा वास्तविकता को ढक देने की लेशमात्र भी कोशिश नहीं की गई है।

दूसरे वर्ग वाली कहानियों में वास्तविकता को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने से अधिक उन पात्रों की सृष्टि करने का प्रयास किया गया है जो आधुनिक ग्रामीण समाज की विभिन्न विसंगतियों, कुप्रथाओं और अत्याचारों के खिलाफ़ अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व तथा आधुनिक चेतना के बल पर लड़ते हैं। इन कहानियों में भी लेखक की यथार्थ-पहिचान तथा उसका यथार्थ-अंकन इतना सूक्ष्म तथा ज़बरदस्त होता है कि उनके पात्र कोरी कल्पना तथा आधारहीन आदर्श नहीं प्रतीत होते। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रथम वर्ग की कहानियों में सच्चाई और नग्नता की जितनी हृदयविदारक शक्ति थी, जो कभी-कभी पाठकों की संवेदना तथा सहृदयता के लिए चुनौती बनती थी, वह शक्ति इन कहानियों में उतनी नहीं दिखाई देती है।

'पहली घटना' में बाल-विधवा मीना अनेक संघर्षों के बाद अपने पैरों पर खड़ी होने लायक बन जाती है और प्रेमी के साथ विवाह करके आडम्बर और सामंती मानसिकता से भरे परिवारवालों को पछाड़ देती है।

Scanned with CamScanner

जिस प्रेमी के साथ उसकी शादी हुई है, वह भी एक शिक्षित तथा सुलझे हुए विचारों का नवयुवक है और गाँव के विभिन्न सुधार-कार्यों में जी-जान से संलग्न है।

'संगीत बनर्जी' उस महिला की कहानी है जो आत्मविश्वास और योग्यता के बल पर सामाजिक बन्धनों तथा पूर्वाग्रहों का सामना करके असहाय नारियों के कल्याण के लिए गाँव में एक संस्था की स्थापना करती है। इन दो कहानियों के अतिरिक्त 'पत्थर की लकीर', 'बाबूजी' और 'बीजारोपण' के नाम गिने जा सकते हैं। इन कहानियों के पात्रों की समान विशेषता यह है कि वे सब अपने जीवन की अपने ढंग की व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। समाज द्वारा दी गई घिसी-पिटी व्याख्याओं को वे स्वीकार नहीं करते, जो मर्यादा तथा संस्कृति के नाम पर सदियों से मानवता पर हावी रही है। संकीर्ण तथा ढोंगपूर्ण मर्यादा से टक्कर खाकर कुछ पात्रों की जिन्दगी तबाह हो जाती है। इसके अच्छे उदाहरण 'बीजारोपण' और 'बाबू जी' में चित्रित किये गये मिलते हैं।

'बीजारोपण' का गरीब बनिहार धरीछन अपनी मृत पत्नी के हाथ-पैर पर प्रथानुसार कीलें ठोंक देने से इन्कार करता है। गाँववाले यह कहकर उसको समझाने की कोशिश करते हैं कि गर्भवती औरत के शव के हाथ-पैर पर कीलें ठोंक देना चाहिए, नहीं तो वह चुड़ैल बनकर रात-दिन घर पर मँडराती रहेगी। धरीछर की मानवता कराह उठती है। उसके इन्कार करने के कारण गाँववालों की नजरों में वह 'डाय' तथा उसकी मृत पत्नी 'चुड़ैल' बन जाती है। उसके बाद गाँव में जो कुछ दुर्घटनाएँ हुई हैं, उन सबके लिए वे दोनों दोषी ठहराए जाने लगे। अपमानित तथा तिरस्कृत धरीछन गाँव छोड़कर चला जाता है।

'बाबू जी' अपने ढंग की एक अद्‌भूत कहानी है, जिसका लेखन और पाठन चुनौती भरा कार्य प्रतीत होता है। 'बाबू जी' उस आदमी की कहानी है जो अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पूर्ण विकास तथा उपभोग के अतिरिक्त किसी भी चीज़ की परवाह नहीं करता है। वह अपने परिवारवालों को भर्त्सना देते हुए स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है, 'मैं कह रहा हूँ, मैं इज्ज़त-विज्ज़त कुछ नहीं जानता। मैं सिर्फ़ मर्द हूँ और इसलिए कभी-कभी किसी औरत के साथ रह लेता हूँ। और जिस औरत के साथ रह लेता हूँ, उसके साथ कभी ज़ोर-जबरदस्ती नहीं करता हूँ। वह औरत ज़बरन मेरे पास नहीं रहती है। मुझे उसके शरीर की आवश्यकता है, तो उसे भी मेरे मर्द-शरीर की चाह रहती है। हम साथ-साथ रहते।'12 इस पुरुषत्वपूर्ण गर्वोक्ति के सामने इज्ज़त-आबरू का अनुग्रह कितना खोखला और कमज़ोर लगता है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की इतनी साफ-सुथरी और दो टूक परिभाषा हिन्दी साहित्य में कभी कभार ही दी गई मिलती है। रूढ़िगत कुंठाओं से ग्रस्त मर्द नामर्द बन जाता है और स्त्री सती या देवी बन जाती है। वह नौटंकी पार्टी तैयार करके घर-बार छोड़कर चला जाता है। एक शादी समारोह में अपनी पार्टी की नर्तकी की बेइज्जती की जाती देखकर वह गरज उठता है। वह अच्छे-अच्छे घरों की औरतों को मर्दों पर आश्रित रहने के कारण उस नर्तकी से कम इज्जतदार कह देता है। उसी जगह पर अपने लड़कों ही के षड्यन्त्र से उसकी जमकर पिटाई की जाती है। उस नर्तकी की सेवा-सुश्रूषा के बावजूद थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की उसकी इच्छा गाँव के कुंठित तथा संकीर्ण परिस्थिति में पूरी नहीं हो पाती है।

मिथिलेश्वर की शैलियों की दो प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। आगे संक्षेप में उनकी एक अन्य शैलीगत विशेषता पर भी कुछ विवेचन किया जाएगा। उनकी भाषा इतनी सरल तथा धारावाहिक होती है कि लगता है कि लेखक सामने बैठे हुए लोगों को सीधे कहानी सुना रहे हैं। 'आंचलिकता' के अनावश्यक आग्रह से भी उनकी कहानियाँ स्ततन्त्र हैं। प्रांतीय लोकभाषा का प्रयोग भी नहीं किया गया है और भाषा की सुबोधता सुरक्षित रहती है। परन्तु दूसरी तरफ अनपढ़ गाँववालों के वार्त्तालाप में कहीं न कहीं कृत्रिमता लक्षित होती है। बिहार के अशिक्षित तथा गरीब किसानों को मानक खड़ी-बोली हिन्दी में बात करते हुए देखकर थोड़ी कुछ कृत्रिमता का प्रतीत होना स्वाभाविक बात है। यह समस्या मिथिलेश्वर की ही नहीं, बल्कि हर ऐसे लेखक की समस्या लगती है जिसका ध्यान शहर से अधिक गाँव की ओर आकर्षित होता है। 'आंचलिकता' के सम्बन्ध में यह बात

Scanned with CamScanner

स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा कि फणीश्वरनाथ रेणु के लिए जो गाँव आँचलिक था, वह गाँव मिथिलेश्वर के लिए किसी मायने में भी आँचलिक नहीं है। रेणु का गाँव बाहर से देखा गया गाँव था। परन्तु मिथिलेश्वर का गाँव गहराई से भोगा गया तथा झेला गया अपना गाँव है।

III. गाँव से शहर

अपने नवीनतम कहानी-संग्रह की भूमिका में उन्होंने यह लिखा है, 'मेरी मान्यता है कि लेखन अपने सम्पर्कों के दायरे में गाँव या शहर, जहाँ से लिखने के बाध्य हो, वहीं पर लिखें। मेरे जानते किसी भी अच्छी रचना का महत्व गाँव और शहर के आधार पर नहीं, जीवन-सापेक्ष होने के आधार पर होता है। शहर के मज़दूरों की पीड़ा और गाँव के हलवाहों-चरवाहों की पीड़ा में मुझे कभी कोई फर्क नज़र नहीं आता है, ठीक उसी तरह जिस तरह शहर के नेताओं, अफसरों और सेठों की मुस्कान से गाँव के सामंतों की मुस्कान में कोई फर्क नहीं होता है। इसीलिए सृजनात्मक स्तर पर शहर और गाँव का विभाजन किए बगैर गाँव और शहर दोनों पर लिख रहा हूँ।'13 उनके साहित्य-सृजन के इस नये प्रयास तथा आयाम को कितनी सफलता मिलेगी, यह उनकी आगे की रचनाएँ स्वयं स्पष्ट करती जाएँगी। परन्तु उनकी कुछ नई कहानियाँ लेखक के उक्त संकल्प तथा पाठकों की आशा पर पानी फेर देती जान पड़ती हैं। उनकी कदाचित् नवीनतम कहानी 'जंगल होते शहर', जैसे कि शीर्षक ही से अंदाजा लगाया जा सकता है, एक शहर के हिंसात्मक वातावरण के प्रति क्षोभ, भय तथा आक्रोश की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई दिखाई पड़ती है। कालेज के प्राध्यापक सिन्हा बाबू के सामने उनके साथी प्राध्यापक की छात्रों द्वारा हत्या की जाती है। मातमपुरसी की वापसी में भी वह फिर दूसरी हत्या का साक्षी बन जाता है। इन आँखों देखी हत्याओं से अधिक मानसिक धक्का सिन्हा बाबू को इस बात से लगता है कि उन्हें छोड़कर सब लोग हिंसात्मक घटनाओं की तरफ़ तनिक भी ध्यान नहीं देते हैं। आखिर सिन्हा बाबू का दिमाग भय के मारे संतुलन खोने लगता है। यहाँ लेखक का व्यंग्य स्पष्ट समझा जा सकता है, अर्थात् किसका दिमाग विक्षिप्त हो गया है। सिन्हा बाबू का, जो पाशविक हिंसा को देखकर घबरा जाता है, या उन लोगों का, जो देखते हुए भी अनदेखी करते हैं और उल्टे सिन्हा बाबू को पागल समझने लगते हैं। परन्तु लेखक के प्रयास के बावजूद कहानी आद्यंत कमज़ोर तथा बेदम रही है। दो-तीन दिनों के अन्दर दो बार हत्याओं को देख लेना और अखबार में हत्याओं की अनेक खबरें पढ़कर बेचैन हो जाना, मानों इस तरह की खबरों को पहली बार पढ़ी हो, यह सब अस्वाभाविक तथा कृत्रिम लगता है। रास्ते में सिन्हा बाबू का यह चिल्लाना, 'यह अन्याय है·····ज्यादती है·····हत्या करना अपराध है·····जुर्म है'14 जितना हास्यास्पद तथा अप्रासंगिक लगता है, उतना सड़कों पर खड़े हुए ज्ञापन-बोर्ड भी नहीं लगते हैं, यानी 'रिश्वत देना और लेना दोनों अपराध हैं।' या 'दहेज देना और लेना दोनों जुर्म हैं।'

इसी साल की एक और कहानी 'अपने लोग' ग्राम कहानी है, जिसका कथानक संक्षेप में इस प्रकार है। बजरंगी डकैतों के एक गिरोह में छोटी जाति का होने पर भी किसुन चौबे का 'दायाँ' हाथ जिसके बिना कोई काम सम्भव नहीं होता। एक रात रामौतर चमार की बेटी और बहू के बलात्कार निमित्त वे उसके घर में घुस जाते हैं। परन्तु अपनी जाति वाली औरतों पर किये जा रहे अत्याचारों को देखकर सहसा बजरंगी के मन में क्षोभ तथा क्रोध उमड़ आता है। वह चौबे को रोककर दोनों स्त्रियों की इज्जत बचा लेता है। उनकी आँखें बजरंगी के प्रति 'स्नेह और श्रद्धा से भर गई हैं'15 परन्तु क्या यह विश्वसनीय और स्वाभाविक होता है कि विभिन्न कुकर्मों का आदी, एक पक्का डकैत बजरंगी का इतनी आसानी से हृदय-परिवर्तन हो जाता है और अपनी जाति की तो सही, परायी औरतों की इज्ज़त के लिए जान देने को एकदम से तैयार हो जाता है? इस तरह की कहानियाँ बम्बइया फ़िल्मों में तो हर बार देखी जा सकती हैं, परन्तु मिथिलेश्वर की कहानियों में देखने की आशा पाठक नहीं करते हैं। उपर्युक्त दो नवीनतम कहानियों में किसी प्रकार की भी यथार्थ-पहिचान दृष्टिगोचर नहीं होती है, जिसके होते ही उनकी अन्य कहानियाँ विशिष्ट तथा प्रभविष्णु हो पायी थीं। लगातार अपने लेखन-स्तर को ऊँचा बनाये रखना

Scanned with CamScanner

हर मामूली लेखक के वश की बात नहीं है और एक बार प्रतिष्ठित हो चुकने के बाद अधिकतर लेखकों की रचनाओं का स्तर गिरता नज़र आता है। हमें पूर्ण विश्वास है कि मिथिलेश्वर जैसे प्रतिभाशाली लेखक हमारी इस आशंका को अपनी रचनाओं द्वारा निर्मूल साबित करेंगे। अंत में हमारे परम प्रिय मित्र सुयोग्य नवलेखक हरजेन्द्र चौधरी जी को हम अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं, जिन्होंने इस निबन्ध की भाषा का संशोधन करने की कृपा की। इस निबन्ध में जो कुछ त्रुटियाँ तथा कमियाँ रह गई हैं, उन सबके हम ज़िम्मेदार हैं।

●

नोट

1. 'युद्धस्थल' पृष्ठ 135, प्रथम सं० 1981, सरस्वती विहार
2. 'वे जब गाँव आये' "दूसरा महाभारत", पृ० 131, सन् 1979, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
3. वही, पृष्ठ 126
4. 'बन्द रास्तों के बीच' पृ० 10, प्रथम सं० 1978, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
5. 'वे जब गाँव आये' "दूसरा महाभारत", पृ० 126, सन् 1979, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
6. वही, पृष्ठ 125
7. 'विग्रह बाबू', "बाबूजी", पृष्ठ 85, द्वितीय सं० 1980, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
8. 'पहली हँसी' "बन्द रास्तों के बीच", पृष्ठ 153,
9. प्रथम संस्करण की भूमिका "बाबूजी", पृष्ठ 7,
10. वही, पृष्ठ 8
11. 'रात अभी बाकी है' "बन्द रास्तों के बीच", पृष्ठ 144,
12. 'बाबूजी' "बाबूजी", पृष्ठ 115,
13. दो शब्द "गाँव के लोग", पृष्ठ 5, प्रथम सं० 1981, राजपाल एण्ड सन्ज़
14. 'जंगल होते शहर' धर्मयुग, 19 जुलाई, 1981
15. 'अपने लोग' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 11 जनवरी, 1981

अफ्रो-एशिया लेखक संघ अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन जापान में

इस वर्ष नवम्बर में जापानी अफ्रो-एशिया लेखक संघ की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय लेखक सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। इस सम्मेलन में अफ्रो-एशिया लेखक संघ के सभी सदस्य देशों से लेखक, आलोचक आदि भाग लेंगे और अफ्रीकी व एशिया के देशों में वर्तमान समस्याओं पर विचार-विमर्श करेंगे।

इस सम्मेलन में भारत से भी एक लेखक भाग लेंगे।

Scanned with CamScanner

कहानी

एक रिक्शावाले की कहानी

तोमिओ मिज़ोकामि

: 1 :

कीर्ति रिक्शावाला, पन्द्रह साल से रिक्शा खींचता चला आया है। वह ग़रीब तो था ही और रिक्शा चलाने में जी-तोड़ परिश्रम की ज़रूरत होती थी, पर उसे अपने इस धन्धे पर गर्व था : गाढ़े पसीने की कमाई थी और वह अपनी मर्ज़ी का ख़ुद मालिक था।

वह अभी अधेड़ तो नहीं, पर चौंतीस साल के पुरुष को युवक भी नहीं कह सकते, यद्यपि उसका हृष्ट-पुष्ट शरीर एक नौजवान के समान था। हाँ, इससे अधिक, वह अपने दिल के भोलेपन, जो पारवती जाति का सामान्य गुण था, के कारण अपनी उम्र से कम मालूम देता था। वह गढ़वाल के गाँव में खानदानी कृषक घराने में पैदा हुआ था। कहते हैं कि उसके पूर्वज वीर राजपूत थे, अत: कीर्ति सिंह को वंश का अभिमान भी था। उसके पिता को अपने एक घनिष्ठ मित्र के हाथों धोखा खाकर लाखों रुपये की हानि उठानी पड़ी। जमीन-जायदाद तक बेचनी पड़ी। उसका पूरा कुनबा ग़रीबी के नरक कुंड में गिर-सा गया। इसके फलस्वरूप कीर्ति को अपनी शिक्षा केवल तीसरी कक्षा में ही छोड़ देनी पड़ी। उसके बड़े भाई बूढ़े माता-पिता और थोड़ी-सी बची ज़मीन की देखभाल के लिए अपने तीन छोटे भाई और बहनों के साथ गाँव में रह गये, परन्तु कीर्ति को शहर में मज़दूरी के लिए गाँव छोड़ना पड़ा।

अपनी बिरादरी का आश्रय लेकर वह पहले दिल्ली आया था। वहाँ पहले एक रेस्तराँ में बर्तन मांजने का काम किया था, परन्तु यह काम दस साल के लड़के के लिए बहुत सख़्त था, दिन भर की थकावट के बाद रात को सोने के अलावा कुछ नहीं कर सकता था। अभी उसे पढ़ने की बहुत इच्छा थी। इसलिए वह यह काम छोड़कर एक अमीर आदमी के घर में नौकर बन गया ताकि पैसा कमाकर कुछ पढ़ सके। यहाँ तीन साल तक काम किया।

मालिक अच्छे थे और उनके छोटे मुन्ने का अच्छा दोस्त भी बना था। छोटी-मोटी किताबें भी पढ़ने को मिल जाती थीं। किन्तु तन्ख्वाह इतनी नहीं मिलती थी कि पेट भर खा सकें और घर भेजकर माँ-बाप की मदद कर सके। फिर चढ़ती हुई जवानी ने उसे नई दुनियाँ देखने को प्रेरित किया। वह दिल्ली छोड़कर बम्बई आ गया। बम्बई में एक फिल्म-अभिनेत्री के घर में नौकर बना। यह उसके लिए बिल्कुल अलग दुनियाँ थी। यद्यपि यहाँ कीर्ति के साथ बहुत अच्छा व्यवहार नहीं किया गया, बल्कि कभी-कभी कटु-व्यवहार भी किया जाता था, पर कम से कम खाना तो उसे पेट-भर मिलता था, इसलिए दो-तीन साल में वह बहुत हृष्ट-पुष्ट शरीर का नौजवान बन गया।

यहाँ उसने तरह-तरह के आदमियों को देखा : फिल्मी सितारे, फिल्म निर्माता आदि फिल्म उद्योग से सम्बन्धित लोगों का रोज़ तांता-सा लगा रहता था, हर समय शराब और जुआ के दौर चलते थे। उसे बचपन से

Scanned with CamScanner

यह कड़ी शिक्षा मिली थी कि मदिरापान बहुत बुरी चीज़ है, आत्मा को भ्रष्ट करता है। परन्तु वातावरण कुछ ऐसा था कि उसे भी शराब का चसका लगा—हाँ, उसकी पूरी कोशिश थी कि इस दुरभ्यास से कोसों दूर रहे। जब तक किसी मेहमान के हाथों ज़बरदस्ती न पिलाया जाता था तब तक उसने शराब न छूने की ठानी थी।

इस घर में उसे प्राय: ऐश करने वाले आदमी ही मिलते थे, कोई सज्जन पुरुष तो इसकी नज़र में नहीं आया। उसकी मालकिन सज-धज कर बाहर जाती थी और प्रतिदिन किसी न किसी नये आदमी को घर ले आती थी। तितली की तरह चंचल थी। यहाँ का भोग-विलास भरा वातावरण उसे अच्छा नहीं लगा, अत: उसने फिल्म अभिनेत्री के यहाँ की नौकरी भी छोड़ी। यहाँ उसने यह शिक्षा पाई कि आदमी धनी होने मात्र से सुखी नहीं होता, भले ही मालकिन अपने को सुखी समझती हो, पर कीर्ति को वह सुखी नज़र नहीं आई।

कई बार उसने किसी कम्पनी या कारख़ाने में पक्की नौकरी पाने की कोशिश की। परन्तु उसने विशेष कुछ तकनीकी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। यह योग्य नहीं था—ऐसी बात नहीं थी, सिर्फ अवसर से वंचित था। उसकी निरीहता, कर्मठता, सहनशीलता और उसका भोलापन इनमें से कोई गुण पक्की नौकरी दिलाने में काम नहीं आया। फिर भी उसने कभी किसी से असन्तोष प्रकट नहीं किया। संयोग से उसे दादर स्टेशन पर कुली का काम मिला। यह मज़दूरी भी सख्त थी, पर उसका स्वस्थ बदन भारी सामान उठाने के काबिल था। यहाँ भी उसने नाना प्रकार के यात्रियों को देखा, विरह-मिलन सब देखा। उसे लगा कि स्टेशन जीवन का एक रंगमंच है। उसने कुली का काम करते-करते मराठी, गुजराती और थोड़ी अंग्रेज़ी भी सीखी।

वह अब साल में दो बार छुट्टियाँ लेकर गढ़वाल चला जाता था, परन्तु दिन-रात कड़ी मेहनत करके कुछ बचत भी कर लेता था। उसने बैंक में अकाउंट खोला। बूढ़े माँ-बाप की इच्छा थी कि कीर्ति की शादी जल्दी कर दी जाए। अब वह उन्नीस साल का पूरा नौजवान था, हर तरह से शादी के लायक था। बड़े भाई ने अपने गाँव की सत्रह साल की एक लड़की को कीर्ति की वधू के रूप में सुझाया जो उस जैसी बिल्कुल भोली-भाली लड़की थी। माँ-बाप और बड़े भाई के आग्रह को टालने का विशेष कोई कारण नहीं था, अत: उसने उन लोगों के कहने के अनुसार उस लड़की से शादी कर ली। अब उसकी नई ज़िन्दगी शुरू हो गई, पर उसके साथ विडम्बना तो यह थी कि अपने इस गाँव में ज़मीन की तंगी की वजह से गुज़ारा नहीं हो सकता था। अत: उसे फिर नौकरी की तलाश में शहर जाना पड़ा।

: 2 :

कीर्ति जीवन में हर प्रकार का दु:ख झेलता आया है, परन्तु कभी अपने भाग्य पर रोया नहीं। किसी भी कष्ट को चुपचाप हँसते-हँसते सहन करता आया है। भगवान् ने एक ओर उसे धन से वंचित किया था तो दूसरी ओर उसे अद्भुत सहन-शक्ति और लगन प्रदान की थी। वह जीवन में उन्नति करना चाहता था। कई बार पेशा बदलने के पीछे यह भाव काम करता था—असन्तोष का कारण इसकी तुलना में कम था। अब वह किसी के यहाँ नौकरी करना नहीं चाहता, बल्कि 'सेल्फ़-एम्प्लोई' बनना चाहता था। लेकिन कीर्ति जैसे अल्प-शिक्षित तथा अल्प पुँज वाले व्यक्ति के लिए, जिसने कभी 'स्किल्ड लेबर' नहीं सीखा, 'सेल्फ़-एम्प्लोई' बनना इस प्रकार कठिन था मानों एक ग़रीब का महलों के ख्वाब देखना। कीर्ति सीधा-सादा आदमी था, पर उसमें बुद्धि का अभाव नहीं था। उसने मेरठ शहर में अपना रिक्शा चलाने का सोचा। अब तक की अपनी कुल बचत पाँच सौ रुपये, एक नया रिक्शा खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं थी, पर आधा तो नक़द में दे सकता था। बाक़ी खर्चे के लिए उसने रिक्शा संघ के नाम बैंक से उधार ले लिया। इस प्रकार उसे नया चमचमाता रिक्शा मिला। जब उसने पहली बार इस नये रिक्शे को देखा तो वह गद्गद् हो गया। ऐसी अद्भुत् तृप्ति मिली जैसी उसे जीवन में पहली बार 'अपनी' चीज़ प्राप्त हुई हो।

Scanned with CamScanner

मेरठ के अधिकांश रिक्शा चालकों के पास अपना रिक्शा नहीं था, उन लोगों के मालिक उनकी कमाई का अधिकांश भाग हड़प लेते थे। इस दृष्टि से कीर्ति अन्य रिक्शावालों से कहीं अधिक सौभाग्यवान् था। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि अगर पूरी मेहनत और ईमानदारी से काम करें तो इस शहर के सभी रिक्शा चालक अपना रिक्शा खरीद सकेंगे और मालिकों के शोषण से मुक्ति पा सकेंगे। उसने रिक्शे पर बैठकर पैडल चलाया, कितना हल्का और द्रुतगामी था ! वह चलता क्या था मानों हवा से बातें कर रहा हो। उसे लगा मानों वह महाराणा प्रताप बनकर चेतक पर बैठा हो। लेकिन कुछ दूर जाने के बाद जब बाईं ओर मोड़ना चाहा तो नहीं मोड़ सका। जल्दी से हैण्डल घुमाया, लेकिन जिस दिशा में वह जाना चाहता था उस दिशा में न जाकर एक बिजली के खम्भे से टकरा गया। उसको साइकिल चलाना तो आता था, किन्तु साइकिल और रिक्शा चलाने में बड़ा अन्तर मालूम हुआ। रिक्शे का हैण्डल बहुत भारी था, इसलिए हैण्डल घुमाना बहुत मुश्किल लगा। उसे मालूम हो गया कि देखने में आसान लगता है, लेकिन रिक्शा चलाने में बड़ी कुशलता की आवश्यकता है, हर कोई तो नहीं चला सकता। विशेषत: जहाँ गाड़ी और आदमियों की भीड़ लगी रहती हो वहाँ से निकलने के लिए एकाग्रचित्त होकर हैण्डल पकड़ना पड़ता है, नहीं तो दुर्घटनाग्रस्त होने की बहुत सम्भावना थी। कीर्ति को इस दक्षता को प्राप्त करने के लिये पूरा हफ्ता लगा था। अब उसे पूरा विश्वास हो गया कि रिक्शा चलाना भी 'स्किल्ड लेबर' की कोटि में आ जाना चाहिए। एक तो वह 'सेल्फ़-एम्प्लोई' था, और अब 'स्किल्ड-लेबर' बना ! सोने में सुहागा-सा लगा। अब वह शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक सवारियों को बिठाकर ले जाता था। इतवार को भी काम करता था, किन्तु जिस दिन आराम करने की इच्छा हुई तो आराम करता था : वह खुद मालिक था, किसी से अनुमति लेने की जरूरत नहीं थी। शहर में एक छोटी-सी कोठरी भी ले ली। नाश्ता और रात को खाना खाता था। दिन को खाना नहीं खाता था—हाँ, चाय तो बहुत पीता था : मेहनत का काम था, पसीना जल-प्रपात की तरह बह निकलता था,। एक दिन की उसकी औसत कमाई लगभग दस रुपये थी। उसका दृढ़ संकल्प था कि रोज़ पाँच रुपये बचाकर प्रति मास डेढ़ सौ रुपये घर भेजेगा। उस ज़माने में गाँव में डेढ़ सौ रुपये बहुत नहीं, तो भी एक परिवार के गुज़ारे के लिए काफ़ी थे।

यहाँ भी उसने तरह-तरह के मनुष्यों को देखा—बूढ़ा, बच्चा, स्त्री, अमीर, ग़रीब, बड़ा, छोटा आदि। सवारियों का आपस में वार्तालाप वह ध्यान से सुन लेता था उसकी जिज्ञासा थी कि लोग किस प्रकार का जीवन बिताते हैं। कीर्ति ईमानदार आदमी था। कभी किसी सवारी से ज्यादा पैसा नहीं माँगा। कुछ रिक्शा वालों के ज्यादा पैसे माँगने से रिक्शावाले बदनाम थे। कीर्ति को अफ़सोस था कि थोड़े से आदमियों की वजह से यह पेशा बदनाम है। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि बेईमानी से पैसे कमाने वाले रिक्शा वाले ख्वाहमख्वाह बहुत ही कम हैं। कीर्ति को इस बात का भी दु:ख था कि कुछ सवारी रूखे शब्दों में बात करती थी, थोड़ा दिशा-भ्रम होने से या धीरे चलाने से उन लोगों के मुख से इस प्रकार के अपशब्द निकलते थे—'अबे, साले ! क्या करता है !' स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए यह अपमान असहनीय था, पर कीर्ति यह भी हँसकर सुन लेता था। उसकी अद्‌भुत सहिष्णुता को देखकर किसी ने कीर्ति को 'बैशाख नंदन' कहा था। कीर्ति यों समझता था कि गाली देने से गाली खाने वाला अपमानित नहीं होता, अपितु गाली देने वाला स्वयं अपमानित हो जाता है। कीर्ति ने देखा कि समाज में सम्मानित कुछ आदमी भी रिक्शावालों से रूखे ढंग से बोलते हैं। कीर्ति को ऐसा लगता है कि ऐसे आदमी पाखण्डी हैं। वह अपनी पीठ के पीछे मनुष्य के चरित्र का सही रूप देख सकता है। यही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसे यह समझ में नहीं आता था कि आदमी क्यों अक्खड़ हो जाता है। उसके विचार में यह उनके दिल की कमजोरी के अलावा कुछ भी नहीं है। कीर्ति यह मानता था कि समाज में बड़े आदमी और छोटे आदमी का फ़र्क अनिवार्य है, किन्तु उसका विचार था कि यह भेद कर्म से जनित होना चाहिए, जन्म से नहीं। कीर्ति साम्यवाद, समाजवाद सरीखे शब्द से परिचित नहीं था, किन्तु उसने जीवन के प्रति अपनी यह धारणा बना रखी थी कि आदमी को समान अवसर प्राप्त होना चाहिए, किन्तु आदमी की क्षमता में मात्राभेद होने के कारण अन्तत: आदमी बराबर नहीं हो सकता। इस दृष्टि से वह समाज में वर्ग-भेद को स्वीकार करता था, परन्तु उच्च वर्ग के लोगों का घमंड होने का कारण

Scanned with CamScanner

उसकी समझ में नहीं आता था। आदमी को वहन करने का काम क्यों निम्न हो सकता है? आख़िर विमान का पायलट भी चालक तो है न? फिर पायलट के प्रति इतना आदर क्यों? शायद इसलिए कि वह मशीन चलाता है और ज्यादा सवारियों का वहन करता है? जितनी बड़ी संख्या में सवारियों का वहन करेगा उतनी ही इज्ज़त मिलेगी? तब रेलगाड़ी के चालक का स्थान पायलट से ऊँचा होना चाहिए।

यदि यह बात है तो सवारी के स्थान के अनुसार चालक का स्थान निर्धारित होना चाहिए क्या? इसका मतलब यह हुआ कि अगर शहर के प्रतिष्ठित न्यायाधीश संयोग से कीर्ति की सवारी बनें तो वह महान् है? और उसके साथी के रिक्शे में कोई मेहतर बैठा हो तो वह नीच है? नहीं, आदमी 'संयोग से' छोटा, बड़ा नहीं हो सकता।

यों सोचते-सोचते दस साल हो गए, लेकिन न तो जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन आया न उसके भोलेपन में, हालांकि उसके पारिवारिक जीवन में बड़ा परिवर्तन आया था। अब वह दो बच्चों का बाप था। साल में दो-तीन बार गाँव वापस जाकर बच्चों के साथ समय बिताने का आनन्द पाकर उसका जीवन और सार्थक हो गया था। वह 'परिवार-नियोजन' को मानता था, इसलिए अब और बच्चे पैदा नहीं करेगा।

सवारियों के प्रति उसका कौतूहल ज्यों का त्यों बना हुआ था। अब उसने आगरा जाकर रिक्शा चलाने का फैसला किया, क्योंकि आगरा में बहुत विदेशी पर्यटक आते हैं। उसने बम्बई में थोड़ी अंग्रेज़ी सीखी हुई थी, अतः विदेशी सवारियों के साथ अंग्रेज़ी में बोलना कितना आनन्दपूर्ण अनुभव होगा! दस साल में वह तीन-चार बार नया रिक्शा खरीद चुका था। इस बार भी उसने यह सोचकर पुराना रिक्शा बेच दिया कि आगरा में फिर नया रिक्शा खरीद लेगा। अब नये रिक्शे का दाम आठ सौ हो गया था।

: 3 :

कीर्ति को आगरा शहर में रिक्शा चलाते चार-पाँच साल तो गये। इस शहर में रिक्शा वालों की बदनामी के बारे में मेरठ से कुछ ज्यादा सुनने को मिला था। कहते हैं कि वे विदेशियों को ठगते हैं, एक विदेशी पर्यटक को आगरा छावनी स्टेशन से ताजमहल तक के किराये के लिए बीस रुपये देने पड़े। कीर्ति को फिर भी विश्वास था कि बेईमान आदमी तो हर जगह हर क्षेत्र में हैं, ज्यादातर रिक्शा वाले ईमानदार होते हैं।

कीर्ति ने यहाँ बहुत से स्वार्थहीन और निष्काम सेवा करने वाले रिक्शा वालों को देखा है। एक समय बस्ती का एक छोटा-सा बच्चा अचानक रोगग्रस्त हो गया था, जान खतरे में थी और चिकित्सालय बहुत दूर था। तब कीर्ति का एक साथी अपने रिक्शे पर बच्चे और उसकी घबराई हुई माँ को बिठाकर कड़ी धूप और गर्मी की परवाह न करते हुए तेज़ी से रिक्शे को चलाते हुए दोनों को डॉक्टर के पास ले गया जिसके कारण उस बच्चे की जान बच गई। माँ के बहुत आग्रह करने पर भी उसने एक भी पैसा नहीं लिया था, उसकी आत्मा को यह संतोष मिला था कि उसने एक इन्सान की जान बचाई। कीर्ति ने सोचा कि ऐसे आदमी को ही समाज में सम्मान मिलना चाहिए।

कीर्ति ने भी खुद दो नौजवान लड़कियों को गुंडों के आक्रमण से बचाया था। एक दिन साँझ ढल चुकी थी। दो नौजवान लड़कियाँ, जो कॉलिज की छात्राएँ मालूम होती थीं, कीर्ति के रिक्शे पर बैठीं। उसने दिल में यह सोचा था कि रात को लड़कियों को बाहर नहीं निकलना चाहिए। हज़ार में से एक रिक्शा वाला तो बदमाश हो सकता है। फिर शहर में गुंडे-आवारा भी तो बहुत हैं। कीर्ति सावधानी से दायीं-बायीं ओर देखता हुआ तेज़ी से रिक्शा चला रहा था कि रास्ते में दो गुंडे अचानक रिक्शे के सामने आ गए और लड़कियों को ज़बरदस्ती ले जाने की कोशिश की। कीर्ति पहले एक गुण्डे का सामना तो कर चुका था, पर कभी दो गुण्डों का सामना नहीं

Scanned with CamScanner

किया था। वह बिना आगा-पीछा सोचे दोनों पर टूट पड़ा और इतनी ज़ोर से घूसों और लातों की बारिश की और शीघ्र ही दोनों को खदेड़ दिया कि दोनों गुण्डे भाग खड़े हुए। लड़कियों को उनके घर तक सकुशल पहुँचाया। लड़कियों के घर वालों ने कीर्ति को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। एक लड़की ने कहा, "आप हमारे यहाँ चाय पीकर जाइये।"

कीर्ति पहले तो कुछ हिचकिचाया, परन्तु उस लड़की के बार-बार आग्रह करने पर उसने स्वीकार कर लिया। उस लड़की के घर वालों ने कुछ इनाम भी देना चाहा, परन्तु उसने इनाम तो यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यह तो उसका फ़र्ज़ था। हाँ, चाय उसने बड़े शौक़ से पी। वह यह देखकर फूला नहीं समाता था कि उसे घर के बाक़ी लोगों के साथ खाने की मेज़-कुर्सी पर बिठाया गया और चाय भी मिट्टी के प्याले में नहीं, बल्कि कप में दी गई थी जिससे घर के और लोग चाय पी रहे थे। और उसे अपने जीवन में पहली बार 'आप' कहकर सम्बोधित किया गया, सुकर्म का फल था ! हाँ, उसके दिल का यह संशय अभी नहीं सुलझा था कि मध्यम पुरुष सर्वनाम 'आप', 'तुम', 'तू' की सापेक्षता का निर्णय करने वाला कौन है ?

कीर्ति की सवारियों में बहुत-से विदेशी पर्यटक भी थे—अंग्रेज़, अमरीकी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी इटालियन, जापानी आदि प्रायः हर देश के लोग कीर्ति की सवारी बन चुके थे। कीर्ति को टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोलने में मज़ा आता था। विदेशी सवारियों से बातचीत करने से एक तो उसे दुनियां भर की नई-नई बातें जानने का मौक़ा मिलता था, दूसरी ओर उसे थकावट का ज़रा भी आभास नहीं होता था। जिस तरीके से भारतीय सवारियों द्वारा कीर्ति की कभी-कभी उपेक्षा की जाती थी वह उपेक्षा विदेशी सवारियों द्वारा कभी नहीं की गई। जिस उल्लास से कीर्ति बात करता था उसी उल्लास से विदेशियों से जवाब मिलता था और प्रत्युत्तर में विदेशी भी कीर्ति से नाना प्रकार के प्रश्न करते थे। हाँ, विदेशियों में भी सब एक जैसे नहीं थे। कीर्ति को लगा कि सबसे ज्यादा खुलकर बोलने वाले अमरीकी हैं, उससे थोड़ा कम बोलने वाले रूसी हैं और सबसे कम बोलने वाले जापानी हैं।

कुछ विदेशियों के मुख से कुछेक रिक्शा वालों की बेईमानी की शिकायत सुनकर तो कीर्ति का मुँह शर्म से नीचा हो जाता था, लेकिन आज उसे विदेशियों द्वारा भोले-भाले रिक्शा वालों के साथ विश्वासघात किये जाने की एक अत्यधिक चौंकाने वाली खबर मिली।

बात यों थी कि तीन जर्मन लड़कियों ने तीन रिक्शावालों से वायदा किया था कि वे उनसे शादी करेंगी। शादी करने के बाद वे उनको जर्मनी ले जायेंगी और वहाँ उन्हें मज़दूरी करने की कोई ज़रूरत नहीं होगी अपितु एक ऐश्वर्य की जिन्दगी होगी। चूँकि रिक्शा वालों से विदेशी लड़कियों की शादी इस शहर में ही नहीं, बल्कि पूरे भारत में एक नई घटना थी, यह खबर समाचार-पत्रों में छपी और शहर में क्या, पूरे देश में फैल गई। इस घटना के प्रति लोगों की विविध प्रतिक्रियाएँ थीं : कुछ लोगों ने कहा कि पागल लड़कियाँ हैं जिन्होंने ऐसी नीच जाति के लोगों से शादी कर ली। किसी ने कहा कि बेचारियों ने रिक्शा वालों से धोखा खाया होगा। किसी ने रिक्शा वालों के 'कौशल' की व्यंग्यपूर्ण प्रशंसा की और कहा कि क़मबख्तों ने गोरी मेमों को अच्छा फँसाया है। और किसी ने खुलके अपना ईर्ष्या-भाव प्रकट किया कि काश ! गोरी मेम से एकात्म होने का सौभाग्य मुझे भी मिलता !

लेकिन यह समाचार छपने के पाँच दिन बाद ये 'पत्नियाँ' अपने 'पतिदेवों' को छोड़कर कहीं भाग गईं। ये लड़कियाँ 'हिप्पी' थीं और उनके विज़ा की अवधि खत्म होने वाली थी, और उसे बढ़ाने का एकमात्र साधन उन्हें भोलेभाले रिक्शा वाले नज़र आए थे। कीर्ति ने सोचा कि बेचारे रिक्शा वाले अवश्य सहानुभूति के पात्र हैं, लेकिन आदमी को इतना सीधा-सादा भी नहीं होना चाहिए। कीर्ति को यह विश्वास हो गया कि कुछ विदेशी लोग भी बदमाश होते हैं। अब वह कुछ सतर्कता से विदेशी पर्यटकों को देखने लगा।

Scanned with CamScanner

इधर एकाध साल से विदेशी सवारियों में से कोई-कोई हिन्दी बोलने वाले भी मिलने लगे—कीर्ति के लिए यह नया अनुभव था। कीर्ति ने अपने पिता से यह सुना था कि अंग्रेज़ लोग भारतीयों के साथ कभी 'आप' का इस्तेमाल नहीं करते थे : अंग्रेज़ शासक थे, इसलिये उनको दबदबा बनाये रखना था। शुरू में कीर्ति की यह कल्पना थी कि सभी विदेशी यही 'साहबी हिन्दी' बोलेंगे। लेकिन प्रायः सभी विदेशियों ने कीर्ति को 'आप' कहकर सम्बोधित किया। कीर्ति को अजीब-सा लगा कि ऐसा क्यों है? उसने यह भी सोचा कि उन लोगों की भाषा में सम्बोधन के लिए सिर्फ़ 'आप' ही मौजूद होगा, बाहर के लोग एक-दूसरे का हमेशा आदर से सम्बोधन करते होंगे। लेकिन उन विदेशी पर्यटकों से बातचीत के दौरान उसे इसका कारण पता चला कि वे लोग किताब से हिन्दी सीखकर आते हैं और किताब में सिर्फ़ 'आप' ही लिखा होता है। किसी अमरीकी ने कीर्ति को यह समझाया है कि यूनिवर्सिटी में शिष्ट भाषा ही सिखाई जाती है और अमरीका की दर्जनों यूनिवर्सिटियों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। कीर्ति को यह सुनकर खुशी हुई कि बाहर के लोग भी हमारी हिन्दी शौक़ से सीख रहे हैं। अब तक कीर्ति की यह धारणा थी कि विदेशी लोग हिन्दी बहुत नहीं जानते होंगे।

जापानियों की मितभाषिता की ओर कीर्ति का ध्यान पहले से था। परन्तु हिन्दी बोलने वाले जापानी दूसरे देशों के लोगों से कुछ ज्यादा थे और जो जापानी हिन्दी बोलते थे काफी उत्साह से बोलते थे, हालांकि धीरे-धीरे बोलते थे। कीर्ति को 'आप' से सम्बोधित किया जाना बुरा तो नहीं लगा, लेकिन अस्वाभाविक लगा, क्योंकि उसमें अति शिष्टता और परायापन था। कीर्ति को 'तुम' से सम्बोधित किया जाने में कोई आपत्ति नहीं थी : 'तुम' में हमेशा निरादर का भाव नहीं है, बल्कि उसमें आत्मीयता का भाव भी है।

कीर्ति का ध्यान विदेशियों में सबसे अधिक जापानियों की ओर आकृष्ट होने लगा, क्योंकि एक तो उन लोगों की शक्ल भी गढ़वाल के लोगों से कुछ मिलती थी, दूसरे उनका व्यवहार बहुत नम्र था।

एक दिन एक जापानी पर्यटक उसे मिला था जो सज्जन पुरुष था और धारावाहिक हिन्दी बोलता था। उम्र लगभग कीर्ति जितनी ही मालूम देती थी। उसकी धारणा थी कि जापानी लोग भी उम्र से कम दीखते हैं। वह ऐसे कम विदेशियों में से एक था जिन्होंने शुरू से ही कीर्ति को 'तुम' कहकर सम्बोधित किया था। कीर्ति को बहुत अच्छा लगा, क्योंकि उसमें अत्यधिक स्वाभाविकता थी और बिल्कुल भी उपेक्षा का भाव नहीं था, बल्कि आत्मीयता से परिपूर्ण था। इतना ही नहीं, वह बिल्कुल स्वाभाविक हिन्दी बोलता था। उच्चारण भी मोटे तौर पर शुद्ध था। उस जापानी के साथ भी आगरा शहर के बारे में, ताजमहल के बारे में, और कीर्ति के जीवन के बारे में इत्यादि तमाम बातें होने लगीं।

"तुम कितने साल से रिक्शा चलाते हो?"—उस जापानी ने पूछा।

"पन्द्रह साल से, साहब।"

"कितने बच्चे हैं तुम्हारे?"

"दो हैं—लड़का और लड़की।"

"तुम कभी-कभी रिक्शे पर अपने बच्चों को बिठाते हो?"

"नहीं, वे तो गाँव में हैं।"

"गाँव किधर है?"

"गढ़वाल में है!"

Scanned with CamScanner

"अच्छा, यह रिक्शा कितने में मिलता है ? और कहाँ मिलेगा ?"

"यह आठ सौ रुपये का है और मेरठ में बनकर आता है। क्यों ? आप रिक्शा खरीदेंगे क्या ?"

"हाँ यही सोच रहा हूँ।"

यह सुनकर उसे बहुत हैरानी हुई। आज तक किसी विदेशी ने रिक्शे के प्रति रुचि प्रकट नहीं की थी। रिक्शे की उपयोगिता पर कीर्ति के संशय को दूर करते हुए उस जापनी ने समझाया कि वह रिक्शा यहाँ बनवाकर जापान ले जाना चाहता है, और अपने बच्चों को रिक्शे में बिठाकर शहर की सैर कराना चाहता है।

कीर्ति यह सुनकर और हैरान हुआ—"क्यों, आपके यहाँ रिक्शा नहीं चलता ?" इस पर जापानी ने आधुनिक जापान का संक्षिप्त इतिहास और रिक्शे का इतिहास बताते हुए कहा कि रिक्शा जापानी शब्द है और अंग्रेज़ी के माध्यम से हिन्दी में अपनाया गया है, मौलिक रिक्शा तो उसी को कहते थे जो दो पहिए वाला है जिसे आदमी ही खींचता है और जो आजकल कलकत्ते में ही उपलब्ध है। तीन पहिए वाला साइकिल-रिक्शा तीन दशक पहले जापान के कुछ खास शहरों की खास जगहों पर खास उद्देश्य के लिये चलता था जिसका नाम भिन्न था। जो भी हो, आजकल जापान में रिक्शा कहीं नहीं चलता। रिक्शे का स्थान बहुत पहले टैक्सी ने ले लिया था।

"हमारे देश में औसतन हर दो घरों में से एक के पास गाड़ी है। और कई अमीरों के पास हवाई जहाज़ भी है, लेकिन रिक्शा किसी के पास नहीं है। इसीलिये मैं इसे जापान ले जाना चाहता हूँ। मेरे बच्चे भी बहुत खुश होंगे। और मेरे व्यायाम के लिये भी अच्छा होगा। एक पंथ दो काज नहीं, तीन काज हैं न ?" कीर्ति हार गया उसकी बुद्धि तथा उसके निरालेपन से।

"साहब ! तब तो मुझे जापान ले चलिये, आपको खुद रिक्शा चलाने की ज़रूरत नहीं होगी।"

इस पर भी जापानी ने लम्बी-लम्बी व्याख्याएँ दीं और कहा कि चाहते हुए भी क़ानूनी पाबन्दी होने की वजह से यह सम्भव नहीं है। क़ानूनी पाबन्दी की बात कीर्ति की समझ में नहीं आई, क्योंकि उसे मालूम था कि बहुत-से भारतीय विलायत और मध्य एशिया में जाकर मज़दूरी करते हैं। इस पर उस जापानी ने समझाया कि जापान का क़ानून विदेशियों के लिए अत्यन्त कड़ा है।

कीर्ति ने अपनी बात पर बल देना ठीक नहीं समझा और विषयान्तर किया—

"साहब, आप अपने रिक्शे का नाम चेतक रखियेगा। बहुत सुन्दर नाम है न ? यह आपके बच्चों की रक्षा करेगा।"

कीर्ति को उस दिन की याद आ गई जिस दिन पहली बार उसने अपना रिक्शा चलाया था। अब कीर्ति के लिए जापान जाकर 'चेतक' को चलाना एक अतृप्त स्वप्न-सा बन गया।

●

Scanned with CamScanner

जापानी बी० ए० हिन्दी छात्र-छात्राओं के निबन्ध

मन्नू भण्डारी "आपका बण्टी"

मिकि कावामुरा

[इस पत्रिका के अंत में जापानी बी० ए० हिन्दी के छात्र-छात्राओं के तीन निबन्ध प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जापान में दस-पन्द्रह विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। इनमें से दो विश्वविद्यालयों में बी० ए० हिन्दी का पाठ्यक्रम है। यहाँ इनमें से एक ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के बी० ए० हिन्दी छात्र-छात्राओं के निबन्ध प्रस्तुत हैं।—सम्पादक]

आजकल भी हर साल बहुत अधिक लोगों के विवाह होते हैं, लेकिन उन लोगों में से बहुत-से पति-पत्नी अलग हो जाते हैं।

विवाह एक सामाजिक बंधन है जो मानव-जीवन को व्यवस्थित करने के लिए समाज ने बनाया है। किन्तु आजकल तलाक हमारे समाज की बहुत बड़ी समस्याओं में से एक है। विशेषकर अगर पति-पत्नी के बीच एक बच्चा हो, तो दोनों का तलाक केवल उनके लिए नहीं, बच्चे के लिए भी बहुत बड़ी बात है।

यह अवश्य सच है कि माता-पिता को अपना सारा जीवन सिर्फ बच्चे को पालने में लगाने की ज़रूरत नहीं। लेकिन दोनों को बच्चे की सही ढंग से परवरिश करनी चाहिए और उसे सबसे अच्छा रास्ता दिखाना चाहिए। इसका कर्त्तव्य माता-पिता दोनों पर है। अगर माता-पिता अलग हो जाएँ तो माता को यह कर्त्तव्य निभाना है या पिता को।

शकुन और अजय अलग हो गये। पहले दोनों का बच्चा बंटी शकुन के साथ रहता था। बंटी की इच्छा थी कि शकुन अजय से फिर दोस्ती कर ले और बंटी ने शकुन के हर दुख को अपना दुख और उसकी हर कही-अनकही इच्छा को एक आदेश-सा बना लिया। बिना शकुन के चाहे या कहे भी वह उसे प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न करता रहा था। और बंटी ने अपने प्यारे पिता को भी भूलने की कोशिश की। शायद बंटी शकुन के साथ अपनी नई जिन्दगी की शुरूआत करना चाहता था। लेकिन शकुन ने डाक्टर जोशी से दूसरी शादी कर ली। बंटो को लगा जैसे उसकी मम्मी अब उसकी नहीं रहीं, डाक्टर जोशी की हो गई और अमि और जोत की, मम्मी ने उसे बिलकुल छोड़ दिया। शकुन बंटी को प्यार करती थी, पर वह बंटी का भाव ठीक-ठीक नहीं समझती थी। इसलिए बंटी के

Scanned with CamScanner

मन में एक सन्तोष हुआ था कुछ ऐसा कर डालने का, जो नहीं करना चाहिए, मम्मी को परेशान करने का। वास्तव में बंटी रोज़ एक हंगामा खड़ा कर देता था। अंत में वह अपने को फालतू और उपेक्षित महसूस करने लगा। और उसके मन की कचोट किसी-न-किसी बात से गहरी हो गयी। शायद बंटी अकेलापन महसूस करता था। वह अपनी ओर शकुन का ध्यान खींचने के लिए कभी-कभी हंगामा खड़ा कर देता था। आखिर शकुन और बंटी आपस में निराश हो गये और थक गये।

मेरी राय में इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि शकुन बंटी की सही ढंग से परवरिश नहीं करती थी। बंटी आठ-नौ साल का लड़का है, अब शिशु नहीं। लेकिन शकुन पहले कालेज के बाद सारा समय और सारा ध्यान एक तरह से उसी पर केन्द्रित कर देती थी। बंटी भी स्कूल के अलावा सारे दिन शकुन के साथ रहता था या फूफी के साथ। यह सब बहुत नार्मल नहीं है। मुझे लगता है जैसे सचमुच बंटी से प्रेम नहीं करती थी, उसे बच्चे से केवल मोह था। कभी-कभी प्यार और देखभाल के नाम पर माता-पिता अपने को इतना थोपे रहते हैं बच्चे पर कि वह कभी पूरी तरह पनप ही नहीं पाता। तलाक के बाद शकुन अपना अकेलापन खत्म करने के चक्कर में बंटी का भविष्य ही खत्म करने वाली थी और कभी-कभी वह मन में सोचती थी कि बंटी केवल उसका बेटा ही नहीं है, वह हथियार भी है, जिससे वह अजय को टारचर कर सकती है, और करेगी। कुछ लोग ऐसी बात कहते होंगे कि शकुन को दोष नहीं देना चाहिए, इस तरह की स्थिति में ऐसा हो जाया करता है। लेकिन उन लोगों से मेरा मतभेद है। अगर पति-पत्नी मुक्त होते तो भी किसी कारण से क्यों न हो, दोनों को अपने बच्चे को परेशान न करना चाहिए। अगर शकुन ने बंटी का मन समझकर उसे कष्ट न दिया होता तो बंटी के मन की कचोट भी धीरे-धीरे समाप्त होती। पहले मैंने कहा कि माता-पिता पर बच्चे का ठीक-ठीक पालन करने का कर्त्तव्य है। यदि शकुन ने कम-से-कम यह कर्त्तव्य निभाया होता तो वह बंटी को विभिन्न मानसिक यातनाओं से बचा सकती थी।

मुझे शकुन और जोशी की शादी बुरी तो नहीं लगती। किन्तु बंटी के मन में अब भी अजय और शकुन के तलाक को लेकर दुःख था। इसलिए शकुन को कुछ दिनों के लिए अपना विवाह टालना चाहिए था और शादी के पहले बंटी को अच्छी तरह समझाना चाहिए था कि वह क्यों जोशी से विवाह करना चाहती है। शकुन ने केवल बंटी से यह कहा "तुझे डाक्टर जोशी अच्छे लगेंगे, वहाँ भी अच्छा लगेगा" यह किसी को समझाने की बात नहीं है। पहले मैंने कहा कि शकुन ने सही ढंग से बंटी का पालन नहीं किया। शकुन भी यह बात मानती थी। शादी के बाद शकुन बंटी से अपने को काटकर उसको और अधिक आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश करने लगी। यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन बंटी हर बात के लिए उस पर निर्भर करता था। अगर शकुन बिना कुछ कहे एकदम पूरी तरह बंटी से मुक्त हो जाएगी तो बंटी को यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगेगी।

सचमुच बंटी अपने को फालतू महसूस करने लगा। इसलिए चाहे शकुन बंटी को अपने पास रखे, चाहे उसे अजय के पास भेजे, उसे बंटी को अपना विचार समझाना चाहिए। अगर मैं शकुन की जगह होती, तो मैं बंटी से यह कहती—"मैंने अपनी नई ज़िन्दगी की शुरूआत करने के लिए डाक्टर जोशी से शादी की है। अब भी मैं तुझे खूब प्यार करती हूँ। आज तक मैं हमेशा तेरे पास रहती थी पर तू इतना बड़ा हो गया है कि अब तुझे मुझ पर निर्भर न करना चाहिए। लड़के को हर काम अपनी शक्ति से करना चाहिए।"

बंटी छोटा लड़का है। शायद अभी वह इस बात को ठीक से समझ नहीं सकेगा, किन्तु आज से आठ-नौ साल बाद की बात सोचिए, जब बंटी की अपनी ज़िन्दगी होगी, अपने स्वतन्त्र सम्बन्ध होंगे तब अवश्य वह अपनी माता की बात समझ सकेगा और बिना किसी पर निर्भर किये, अपना जीवन जी सकेगा। यह बंटी को बचाने के लिए एक अच्छा रास्ता है।

मैं डाक्टर जोशी के बारे में कुछ कहना चाहती हूँ। अवश्य वे बंटी की बात के सम्बन्ध में शकुन को परामर्श तो देते हैं लेकिन वे अपने आप बंटी से कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं करते। शायद बंटी डाक्टर जोशी को

Scanned with CamScanner

प्यार करना चाहता है। डाक्टर जोशी को उसका बाप बनकर उसके बारे में सोचना चाहिए। वे भी बंटी को मानसिक यातना से उबार सकते हैं।

इस उपन्यास में अजय बंटी को अपने घर ले जाता है और फिर वह बंटी को होस्टल भेज देता है। मेरी राय में यह बंटी को बचाने के लिए एक अच्छा विकल्प है। बंटी की उम्र के बच्चों को होस्टल में रहना चाहिए। अपने बराबर के बच्चों के साथ रहना बंटी के लिए एक अच्छा अनुभव है। माता-पिता का तलाक, माता और जोशी की शादी आदि से बंटी बेहद आहत हो गया। इसलिए अब वह बड़ों पर विश्वास नहीं कर सकता। पर होस्टल सचमुच दूसरी दुनिया है। अगर बंटी वहाँ दूसरे बच्चों के साथ रहेगा तो उसे तसल्ली मिलेगी। होस्टल में बंटी किसी पर निर्भर नहीं कर सकेगा। वहाँ उसे अपने आप काम करना होगा। मुझे यह आशा है कि वहाँ बंटी और भी आत्मनिर्भर और शक्तिशाली बनेगा। संसार में वही व्यक्ति सुखी हो जाता है जो आसपास की दुनिया के अनुसार अपने को बना सकता है। बंटी यह बात भी होस्टल में सीखेगा। इसलिए बंटी को होस्टल भेजना एक अच्छा रास्ता है।

Silkroad CO., LTD.

हमारे संस्थान जापान के लोगों को एशियाई एवं मध्यपूर्व देशों की संस्कृतियों का परिचय देने के लिए सक्रिय कार्य करता है।

(१) सांस्कृतिक पत्रिका "सिल्क रोड" का प्रकाशन

(२) एशियाई व मध्यपूर्व देशों की भाषाओं का शिक्षण
भारतीय भाषाओं में हिन्दी, बंगाली, उर्दू का शिक्षण

(३) एशियाई व मध्यपूर्व देशों के संस्कृति सम्बन्धी व्याख्यान

कार्यालय :

Sakura Bldg. 5th Floor
1-8-1, Kaji-Cho, Chiyoda-ku, TOKYO, JAPAN

Scanned with CamScanner

जापानी बी० ए० हिन्दी छात्रा का निबन्ध

नागार्जुन कृत "बाबा बटेसरनाथ" पढ़कर

एदेरा कोदामा

"बाबा बटेसरनाथ" (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1975) को पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ने पर हमें विविध प्रकार की बातें ज्ञात हुईं। हमारे अध्यापक ने जिन बातों पर व्याख्या कीं, वे हमें बहुत दिलचस्प लगीं। इसका एक कारण यह है कि मैं इतनी अज्ञानी थी कि भारत के पंचांग के बारे में भी कुछ नहीं जानती थी। उदाहरण के लिए मुझे नहीं मालूम था कि पूर्ण चन्द्र होने से चन्द्रमास की अन्तिम तिथि निश्चित की जाती है। तो उपन्यास में महीने के अन्त को जापानी में अनुवाद करके "त्सुगोमोरी" कहना गलत है क्योंकि इसका मतलब है "चंद्र का कहीं छिप जाना।"

हमको यह भी दिलचस्प लगा कि भगवान शिव "बं" की ध्वनि पसन्द करते हैं और इसीलिए शिव का दूसरा नाम "बम्भोलेनाथ" हुआ है। इससे समझ सकते हैं कि हिन्दू लोगों के लिए भगवान उनके निकट-निकट रहते हैं। यह लिखते हुए मुझे याद आयी है कि विष्णु के अवतार कृष्ण ने मक्खन को इतना चाहा कि उन्होंने चुराकर मक्खन खाया। इस कारण उनका नाम 'माखनचोर" पड़ गया है।1 फिर हमें यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि समय में भी शुभाशुभ होता है।

इसके अलावा हमको बिहार में लोकप्रिय कई कथाएँ मालूम हुई हैं।2

पहले मैं जो मुझे दिलचस्प लगे, उनमें से दो-तीन विषय पर बताना शुरू करूँगी।

1. जिस तरह जापान और भारत में आवहवा का बहुत-सा अन्तर है उसी तरह जापानी और भारतीय मनोभाव में भी बड़ा भेद है। जेठ की पूनम का वर्णन करके नागार्जुन ने कहा कि पूर्णेन्द्र की चाँदनी दिन की झुलसी हुई प्रकृति के लिए "अमृत वर्षा" है।3 हम ऐसी कल्पना तो अनुभव कर सकते हैं परन्तु आम जापानी के लिए पूर्णचन्द्र की भावना इससे बिल्कुल दूसरी है।

अब "ठण्डा" शब्द लेकर विचार करूँगी।

"बैताल पच्चीसी" में4 निम्नलिखित हिस्सा है। पद्मावती कुँवर के पास बैठकर पंखा झुलने लगती है। यह देखकर कुँवर बोलता है, "हम तुम्हारे देखने से ही ठण्डे हुए, इतनी मिहनत क्यों करती हो ?"—

लेकिन जापानी कम से कम ऐसा अभिव्यंजन नहीं करेगा। हम यों कहेंगे, "मेरे लिए ऐसा न कीजिए, मेरे पास तुम्हारे रहने से ही मुझे गर्मी भूल गई है।"

इन दोनों का अर्थ एक नहीं है। जापान की हवा में नमी बहुत है। गर्मी के दिनों में आदमी गीली गर्मी से मुक्त नहीं हो सकता है चाहे वह छाँह में बैठता हो या सूरज डूब चुका हो। यहाँ गर्मियों में उमस ही होती

Scanned with CamScanner

है, इसलिए हमें उसे भूलने के सिवाय क्या उपाय होगा। हम जलवायु को बदल न सकते, सो अपने-अपने मन की अवस्था बदल देते हैं।

भारत में कड़ी धूप चढ़ती है, खूब गर्मी पड़ती है, पर वहाँ के लोगों को उससे छुटकारा, आराम देने वाला ठण्डा भी मिलता है। अत: "ठण्डा" शब्द से शीतलता चैन की भावनाएँ प्रकट की जा सकती है।

2, जब भारी अकाल पड़ा तब लोगों ने क्या-क्या चीजें खाईं,3 उन दिनों उनका खाना ये थे : जैसे— बने की रोटियाँ, अल्हुआ, मछलियाँ, आम की सूखी गुठलियाँ- चूर-चूर कर मँडुआ का ज़रा-सा आटा उसमें मिला कर बनाया टिक्कड़। वे आम, जामुन, अमरूद, इमली वगैरह की पत्तियाँ उबाल कर ईंट का चूरन इसमें मिलाकर खाया करते थे।5

हम उस देश में रहते हैं जहाँ एनर्जी का कम खर्च पर ज़ोर दिया जा रहा है। यह कोई मामूली बात नहीं। आज भी भारत में बाढ़ और अकाल के कारण हजारों लोग मर जाते हैं। जो रुपये सरकार उनकी आर्थिक सहायता के रूप में देते हैं उन्हें अधिकतर अफ़सर लोग पकड़ लेते हैं।6

3. हिज़री सन् 1280 के अकाल में पण्डितों ने चण्डी-पाठ किये, साधकों ने एक-एक मन्त्र को जपा।7 परन्तु इस तरह बादल को बुलाने से क्या हुआ, कुछ नहीं। आज हमको ऐसी विनती अर्थहीन लगती है। लेकिन जब "बाबा बटेसरनाथ" लिखा गया तब भी लोगों के लिए विज्ञान जादू के बराबर था।8

इस प्रकार के विषय में बातें करना यहाँ छोड़ लूँगी।

बस्ती रुपउली के पिछले युगों की घटनाएँ बाबा बताते हैं। क्यों बाबा के मुँह से ये बतलाये गये ?

क्या इसलिए कि बाबा वही बरगद है जिस पर मृत्यु का खतरा है""और जिसके प्रति लोगों का गहरा स्नेह है ? अथवा इसलिए कि लेखक पुराने समय की बातें ऐतिहासिक ग्रन्थ की तरह लिखने से बचना चाहता था ?

पुस्तक में किसी की "बोलचाल" पढ़कर हमें उससे घनिष्ठता मिलती है। तो लेखक का अभिप्राय यह था कि पढ़ने में, सरलता ? यह हिन्दी भाषा की समस्या भी है। किन्तु मेरा अनुमान है कि जो "बाबा बटेसरनाथ" पढ़ सकते हैं वे अधिकतर पढ़े-लिखे सज्जन हैं। पर जहाँ शिक्षितों की संख्या बहुत कम होती है वहाँ ऐसा उपन्यास पढ़ा भी नहीं जाता। पर मेरी राय में सुनने के लिए "बाबा बटेसरनाथ" जैसा उपन्यास अशिक्षित लोगों के लिए आरामदेह है। ("बाबा बटेसरनाथ" पढ़कर मुझे ज्ञात हुआ कि पुस्तकों का पारायण गाँव में अक्सर होता है।)

लेकिन यह महत्त्वपूर्ण समस्या नहीं लगती कि इस उपन्यास का आधा भाग बाबा की बोली है या नहीं। वास्तव में मुझे इस तरह के मूल विषय को उपन्यास के रूप में पेश करना ठीक नहीं लगता। फिर भी मैं महसूस करती हूँ कि इस लेखक के हृदय में इतना गुस्सा उत्पन्न हुआ है कि वह कुछ लिखे बिना नहीं रह सकता।

किस के प्रति गुस्सा ? पाठक के प्रति, अंग्रेज शासक के प्रति, जो अपना ही लाभ देखता है वही व्यक्ति के प्रति। हो सकता है कि बरगद के प्रति लोगों की ममता भी पाठक आदि स्वार्थी व्यक्तियों के प्रति उसका गुस्सा प्रकट करने के लिए लिखा गया है। किन्तु सिर्फ ज़मींदार और धनी किसान ही लालची होते हैं ? नहीं। गाँव के और लोगों में भी स्वार्थ ज़रूर होगा। "गोदान" में इसका भी ब्यौरेवार वर्णन किया गया है।

"बाबा बटेसरनाथ" में यह निश्चित है कि कौन अच्छे मनुष्य हैं और कौन बुरे। बुरे पक्ष के व्यक्तियों में सिर्फ़ सतदेव (जैनरायन का भानजा) ईमानदार और मेहनती व्यक्ति है। इसके सिवा पाठक और जैनरायन इत्यादि "बदमाश" सब ज़ालिम, बेशर्म हैं और उनके बच्चे मूर्ख हैं और कंजूस।

Scanned with CamScanner

अब देखो बाबा बटेसरनाथ की बातें जो आदर्श से भरी युवक की तरह सच्चरित है—"जीने के लि जीना, जीना नहीं है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है।"9 "बीते युगों की सड़ांध का समर्थन किसी भी कीम पर नहीं कर सकूँगा। भविष्य तेरे-जैसे तरुणों के हाथों में है।" 10 इत्यादि।

इसकी अपेक्षा "गोदान" में तो ऐसे आदमी का वर्णन किया गया है जिसकी आत्मा बहुत ऊँची न है बल्कि उसका स्वभाव अच्छा भी है और बुरा। गरीब असामी का विषाद, ज़मींदार के प्रति गुस्सा, गाँव की दश पर प्रश्न,—ये गोबर से हमारे सामने रखे गये हैं। अन्त में गोबर ने मान लिया कि दुःख ग्रामवासियों को एक सू में बाँध देता है और "बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों में तोड़े डालते हो, उस बन्धन को एक का बना लो।"11

"गोदान" पढ़कर हमको ऐसा लगा कि गाँव के लोगों का व्यवहार अक्सर स्वार्थी होता है। उनकी भावन लाभ-हानि से आसानी से बदलती है। सबको कुछ न कुछ शिकायत हैं, पर ऐसा आदमी बहुत कम है जिसमें गोब की तरह पक्का अवज्ञाकारी भाव हो।

और 1980 फरवरी के नरायनपुर, पिपरा इत्यादि बस्तियों के कांड क्यों हुए ?

इसलिए हमें ऐसी आशावान् कहानी बड़ी सच्चाई की नहीं लगती जो "बाबा बटेसरनाथ" में लिखं गयी है।

●

नोट

1.	"बहता पानी निर्मला"	पृष्ठ 26.
2.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 12, 34, 37, 49, 91 आदि
3.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 1, 10
4.	"बैताल पच्चीसी"	पृष्ठ 13
5.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 52-62
6.	"बागा फुरुसातो नो इन्दो"	मोहनती, अनु० कोनिशि, पृष्ठ 42
7.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 53
8.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 2
9.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 14
10.	"बाबा बटेसरनाथ"	पृष्ठ 50
11.	"गोदान" सरस्वती प्रेस, बनारस	पृष्ठ 356

Scanned with CamScanner

जापानी बी० ए० हिन्दी छात्र का निबन्ध

"बाबा बटेसरनाथ" एक विवेचन

यूइचिरो मिकि

नागार्जुन कृत "बाबा बटेसरनाथ" (1954) की पृष्ठभूमि कांग्रेसी सरकार के द्वारा 1952 ई० का जमींदारी उन्मूलन है। इस उपन्यास का घटनास्थल बिहार का एक गाँव है, जहाँ की बोली मैथिली है।

इस लेख में पहले हम उपन्यास के कथानक की कुछ विशेषताओं पर ज़िक्र करेंगे। फिर औपनिवेशक युग में भूस्वामी से असामी के सम्बन्ध तथा गाँव पर अंग्रेजी शासन के प्रभाव पर विचार करेंगे, जिससे ग्रामीण जीवन के बारे में लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट किया जाएगा। लेख का अन्तिम उद्देश्य उस दृष्टिकोण की कुछ समस्याओं पर प्रकाश डालने से है।

1. "बाबा बटेसरनाथ" के कथानक की कुछ विशेषताएँ

उपन्यास के प्रारम्भ में जब ज़मींदारी-उन्मूलन-बिल स्टेट असेम्बली में पास हो जाने वाला था, तब ज़मींदार गाँव के सार्वजनिक उपयोग की बरगद वाली भूमि को अपनी व्यक्तिगत जायदाद मानकर बेचने जा रहा था। गाँव के बड़े किसानों को उस ज़मीन पर कब्ज़ा होने का सुअवसर मिला। उनके प्रति साधारण किसानों की ओर से प्रतिक्रिया भी छिड़ गई। लोग बरगद वाली ज़मीन को सार्वजनिक जगह मानते थे, इसलिए उस पर कोई भी व्यक्तिगत अधिकार नहीं कर पाया था। जैकिसुन यादव उस आन्दोलन का एक कार्यकर्त्ता था। यहाँ, बाबा बटेसरनाथ (उक्त बरगद का मानव रूप) ने उससे 16वीं शताब्दी के मध्य काल से लेकर स्वराज्य आन्दोलन की अवधि तक के गाँव का इतिहास सुना दिया। लेखक इस पर ज़ोर देता है कि जो भी ज़माना हो, उसमें साधारण जनता पर दमन किया गया है। उसके बाद फिर लेखक ने बरगद वाली ज़मीन के बारे में असामी-गरीब किसानों के संग्राम की चर्चा शुरू की। 1951 को ज़मींदारी उन्मूलन-बिल स्टेट असेम्बली में पास हो चुका था, मगर उसमें यह बात स्पष्ट नहीं थी कि हाट, बाज़ार, पोखर, झील, बाग-बगीचा एवं बरगद वाली ज़मीन की शुमार ज़मींदार की व्यक्तिगत जायदाद के अन्दर होगी या नहीं। दो वर्गों के बीच झगड़ा होने का वह एक महत्त्वपूर्ण कारण था। लेखक इस तरह कांग्रेस पर दोष लगाता है कि वह व्यक्तिगत सम्पत्ति के वाजिब हकों का दायरा बेहद बढ़ाकर ज़मींदारी प्रथा का नकली श्राद्ध कर रहा है। यानी उसका कहना है कि कांग्रेस भूस्वामी बड़े किसान बनिया और बड़े ओफिसर इत्यादि की पार्टी है, साधारण जनता की नहीं।

उपन्यास के अन्त में किसानों की माँग स्वीकार की गई, यद्यपि उन्हें विजय आसानी से न मिली। लेखक का विश्वास है कि वह ज़माना ज़रूर आएगा जिसमें असामी और गरीब किसान वगैरह आम लोग गाँव के स्वामी हों।

Scanned with CamScanner

"बाबा बटेसरनाथ" के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिए हमें लेखक की दूसरी रचना का अध्ययन करना भी आवश्यक है। "दुखमोचन" (1956) लेखक का एक और उपन्यास है। उसमें ज़मींदारी-उन्मूलन के बाद मिथिला के गाँव की व्यवस्था का चित्रण मिलता है। किसानों का संगठन मज़बूत हो गया है और ग्राम-पंचायत के द्वारा स्वराज्य मिला है। गाँव वालों की रहन-सहन का स्तर या जजमानों की मज़दूरी में भी बहुत-कुछ उन्नति हुई है। भूस्वामियों और बड़े किसानों के द्वारा बेदखली जैसा प्रत्यक्ष दमन कम हो गया है। इसके बदले में दोनों वर्गों का परस्पर विरोध अप्रत्यक्ष रूप धारण करने लगा, जैसे रिलीफ़-फण्ड के बँटवारे और नई सड़क के निर्माण के बारे में गड़बड़ी, अधार्मिक विवाह को लेकर नई-पुरानी इन दोनों पीढ़ियों के बीच झंझट, आदि-आदि।

लेकिन समाचार पत्रों या पत्रिकाओं को पढ़िए, तो तुरन्त समझ में आएगा कि आजकल भी बहुत-से गरीब किसान और खेत मज़दूर भूमि हड़प, हत्या, जिन्दा जलाना और बलात्कार वगैरह से उत्पीड़ित रहते हैं। अतएव भूस्वामी और असामी के बीच प्रत्यक्ष प्रतिद्वन्द्व कम नहीं होता है। इसलिए ऐसा लगता है कि गाँव की वास्तविक दशा की अपेक्षा "दुखमोचन" में वर्णित की गई अवस्था अधिक शान्तिपूर्ण और सुखद है। अतः यह परिणाम निकाला जा सकता है कि दोनों "बाबा बटेसरनाथ" और "दुखमोचन" ज्यादा आदर्शवादी हैं। इन रचनाओं में हम लेखक के विश्वास और इच्छा अधिक देखते हैं। आखिर नागार्जुन ने अपने उपन्यास में गाँव वालों के ऐसे संगठन और आन्दोलन का चित्रण किया जैसे अपनी विचारधारा या राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुकूल थे।

अब हमें "बाबा बटेसरनाथ" के कथानक की दूसरी विशेषता पर ध्यान देना चाहिए। उसमें 16वीं सदी के मध्य काल से लेकर स्वराज्य आन्दोलन की अवधि तक के ग्रामीण जीवन का सविस्तार चित्रण मिलता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी राज का गाँव पर असर, बाढ़ और अकाल की दुर्दशा, रिआया पर ज़मींदार का जुल्म, गाँव में तरह-तरह के रीति-रिवाज, स्वराज्य आन्दोलन से गाँव का सम्बन्ध, बड़े किसानों के पूर्वज का जीवन-चरित आदि, आदि। इनके विस्तृत अध्ययन से हम बिहार के ग्रामीण जीवन के बारे में बहुत-कुछ समझ सकते हैं। हमने इस लेख में खास तौर से लेखक के राजनीतिक और वैचारिक दृष्टिकोण पर विवेचन किया, किन्तु हो सकता है कि इस उपन्यास में चित्रित किए गए ग्रामीण जीवन के अनेक पहलुओं पर ध्यान देना और भी हितकर हो।

यहाँ ग्रामीण जीवन के बारे में लेखक के आधारभूत दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए हम विशेषकर उपर्युक्त दो विषयों पर विचार करेंगे।

2, ज़मींदार-बड़े किसान और असामी-गरीब किसान इन दो वर्गों का परस्पर सम्बन्ध

"बाबा बटेसरनाथ" में तीन श्रेणियाँ आती हैं, अर्थात् ज़मींदार, बड़े किसान और गाँव के अन्य साधारण लोग। अब हम इन तीनों के सम्बन्ध पर विचार करेंगे।

पहले इस पर ध्यान देना चाहिए कि औपनिवेशिक काल में ज़मींदार का कितना बढ़ा अधिकार था। जो एक गुण्डा ज़मींदार की जी-हुजूरी करता था, उसने राजपूत खेतिहर के खिलाफ उसके कान भरवाये। चटपट किसान को ज़मींदार के प्यादे से बुलवाया गया और कर्ज की चुकाई मजबूर की गई। पर उसके पास पैसे नहीं थे। अंत में प्यादे ने निर्दय ढंग से उसकी हत्या कर दी। इस घटना से ज्ञात होता है कि उस समय ज़मींदार के हाथ में अपनी रिआया की जान छीन लेने का अधिकार भी था।

फिर उसके बेटे की बारात के शानदार जुलूस में बहुत से खेतिहर मुफ्त में भारी-सी तख्तपोश ढोये जा रहे थे। अपनी रिआया से बेगार लेना ज़मींदार का सहज अधिकार था। लेखक ने ठीक ही लिखा कि सौ वर्ष पहले दरअसल अपने इलाकों में ज़मींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था।

Scanned with CamScanner

"बाबा बटेसरनाथ" में हमें ज़मींदार ही नहीं बल्कि बड़े किसानों के वृत्तांत भी काफी मिलते हैं। बड़े किसान टुनाई पाठक ने उक्त बरगद वाली ज़मीन अपनाने को चाहा। उसके बाप ने नेपाल के मोरङ इलाके में राणा-परिवारों की खुशामद करके बहुत रुपया कमाया था। मिथिला के बड़े किसानों से नेपाल के सम्बन्ध का ज़िक्र "दुखमोचन" में भी मिलता है। यह कांग्रेस वालों की पहली मिनिस्ट्री के ज़माने (1937-38) की बात थी कि टुनाई पाठक ने पाँच बीघा उपजाऊ धनहर खेत सिर्फ दो-सौ नकद देकर ज़मींदार से लिखवा लिए। यह घटना हमें फ़णीश्वरनाथ रेण कृत "मैला आँचल" (1954) की याद दिलाती है। इसमें भी कांग्रेस वालों की पहली मिनिस्ट्री के ज़माने में मिथिला के एक गाँव का सविस्तार चित्रण मिलता है। जब कांग्रेस के द्वारा दफ़ा 44 नामक एक कानून असेम्बली में पास हो गया तब से ज़मीन का क्रय-विक्रय, लेन-देन प्रान्तीय सरकार की ओर से स्वीकार किया गया। ज़मींदार और बड़े किसान उन गरीब किसानो की ज़मीन को ज़ब्त करने में मशगूल होने लगे, जिनके उधार की चुकाई पूरी न हुई थी। गरीब किसानों के खेत नीलाम पर चढ़ने यगे।

हम दो लेखकों के उपन्यास से यह अनुमान लगाते हैं कि कांग्रेसी प्रान्तीय सरकार की राजनीति भू-स्वामियों और बड़े किसानों के लिए ज्यादा लाभ में थी। यह मालूम होता है कि बड़े किसान ज़मींदार की मदद करते हुए अथवा उसका अनुचर बनकर गरीब किसानों पर दबोच देते थे और यदा-कदा स्वयं भी छोटे ज़मींदार हो जाते थे। उनके ये दुर्व्यवहार अंग्रेज शासन काल में ही नहीं बल्कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी चालू रहते हैं, जिनका एक उदाहरण "बाबा बटेसरनाथ" में बरगद वाली गड़बड़ी है।

अब हम बड़े किसानों से गाँव के साधारण लोगों के सम्बन्ध पर विचार करेंगे। बड़े किसानों के लड़के उच्च शिक्षा पाकर शहर में वकील, बड़े आफिसर, प्रोफेसर जैसे ऊँचे ओहदों पर हो गए हैं। अपने गाँव के बारे में उनकी केवल यही परवाह है कि गरीबों के गले घोंटकर लाभ उठाएँ और ज़मीन ज़ब्त करें। इसलिए लोग उनके नाम ले-लेकर थूकते हैं।

यहाँ हम संक्षिप्त में "बाबा बटेसरनाथ" में तीन श्रेणियों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट करेंगे। पहले जमींदार गरीब किसान अर्थात् अपनी रिआया पर पूर्णाधिकार रखता था। पर यह मुख्यतः औपनिवेशिक काल की बात थी। फिर बड़े किसान जमींदार का अनुयायी बनकर गरीब किसानों का दमन करते हैं और खुद मोटे-मोटे जमींदार हो जाते हैं। इस वर्ग में उन लोगों की संख्या भी अधिक है, जो उच्च शिक्षा पाकर शहर में ऊँचे पद पर विराजमान हैं। अंत में गाँव के साधारण लोग उनसे घृणा करते हैं।

इस उपन्यास में तीन श्रेणिया आती हैं, किन्तु हम उन्हें दो वर्ग भी मान सकते हैं। अर्थात् भूस्वामी बड़े किसान और असामी-गरीब किसान है। उपन्यास के अंत में बरगद वाली ज़मीन को लेकर एक ही समय इन दोनों वर्गों में विवाद तेज हो जाता है। लेखक गाँव के इतिहास के वर्णन में भी इस पर ज़ोर देता है कि शोषक वर्ग ने क्योंकर गरीबों को उत्पीड़ित किया। निस्संदेह नागार्जुन ज़मींदार—बड़े किसान और असामी-गरीब किसान, इन दो वर्गों के प्रतिद्वन्द्व के जरिये ग्रामीण जीवन का चित्रण करता है। उसका राजनीतिक दृष्टिकोण भी सुस्पष्ट है कि भूस्वामी-बड़े किसान के अत्याचार के विरुद्ध असामी-गरीब किसान के संघर्ष का समर्थन वह खुले आम करते हैं।

3. गाँव पर अंग्रेज शासन का प्रभाव

"दुखमोचन" "बलचनमा" और "मैला आँचल" की तुलना में "बाबा बटेसरनाथ" में गाँव पर अंग्रेज शासन के प्रभाव के बारे में सविस्तार चित्रण मिलता है। जैकिसुन के परदादे का ज़माना इतिहास में साम्राज्यवाद का युग कहा जाता है, जो 16वीं शताब्दी के अंत से 20वीं के प्रारम्भ तक चलता था। उस समय "बाबा बटेसरनाथ" के गाँव में भी अंग्रेजों ने आकर नील की एक कम्पनी खोल दी। किसान लोग नील की खेती करने के लिए मजबूर किए गए। इसके फलस्वरूप पचास-पचपन वर्ष के बाद गोरा साहब अपनी ज़मीन बेचकर कलकत्ता

Scanned with CamScanner

चला गया, तब नील की खेती पीछे फायदे की नहीं रह गई। अतएव उस समय किसानों के ऊपर एक तरफ तो ज़मींदार का दबदबा, दूसरी तरफ अंग्रेजी साम्राज्यवाद का दमन जम बैठा था।

फिर हमें गाँव वालों के प्रति अंग्रेजों के आचार पर ध्यान देना चाहिए। गोरे साहब के साले को सलाम न देने के कारण जैकिसुन का दादा बुरी तरह पिट गया। जो व्यवहार मानवतावाद के बिल्कुल खिलाफ़ था, वह बिना संकोच किया जाता था, "बाबा बटेसरनाथ" में अंग्रेज बहादुर शब्द आता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि औपनिवेशिक युग में हिन्दुस्तानियों के दिल में अंग्रेजों के प्रति एक किस्म का भय होता था।

गाँव पर अंग्रेज शासन के असर पर विचार करने के लिए हम जो रेल-पथ निर्माण नहीं भूल सकते, वह अकाल में किसानों के उद्धार के बहाने से सरकार की ओर से प्रोत्साहित किया गया। रानी विक्टोरिया के ज़माने की बात थी। इस योजना का असली लक्ष्य अंग्रेजों के द्वारा व्यापारिक लाभ उठाने में था, किसानों के बचाव में कदापि नहीं। अनेक किसान अपने गाँव छोड़कर रेल-पथ निर्माण में मशगूल होने लगे। वे कम से कम मज़दूरी पर ज्यादा से ज्यादा काम करने पर विवश किए गए। सुना है कि आजकल भी बहुत कुछ अंग्रेज गर्व से कहते हैं कि वह तो अंग्रेज शासन था जिसने हिन्दुस्तान में रेल-पथ का निर्माण किया। अगर वे लोग यह उपन्यास पढ़ें तो उन्हें कैसा लगेगा ?

अंग्रेज शासन के बारे में इनके अतिरिक्त भी चित्रण मिलते हैं। उदाहरण के लिए, गाँव में उन लोगों की संख्या समय के साथ-साथ बढ़ती जाती थी जिन्हें अंग्रेजी आती थी और औपनिवेशिक काल में ब्राह्मण राजपूत भुँइहार जैसे बड़े जाति वालों के कुछ लड़कों को फौज में जगह मिली थी।

इसी तरह लेखक ने "बाबा बटेसरनाथ" में गाँव पर अंग्रेज शासन के प्रभाव के अनेक पहलुओं का चित्रण किया है "बलचनमा" और "मैला आँचल" में स्पष्ट रूप से यह दृष्टिकोण दिखाई नहीं पड़ता है। लेखक का राजनीतिक दृष्टिकोण सुस्पष्ट है कि वह अंग्रेज राज के द्वारा गाँव में पहुँचाई गई हानियों पर दोषारोपण करता है। वे हानियाँ इस प्रकार हैं :—1. पूँजीवादी-उत्पादन-प्रणाली से उत्पन्न की गई किसानों की दुःख-तकलीफ़ का एक उदाहरण नील कम्पनी की चर्चा में मिलता है, 2. हिन्दुस्तानियों के प्रति अंग्रेजों का अपमानजनक और क्रूर व्यवहार से जैकिसुन के दादा का शिकार होना, 3. रेल-पथ निर्माण, पाखण्डी और धूर्त्त शासन आदि-आदि।

4. ग्रामीण जीवन के बारे में नागार्जुन के दृष्टिकोण की कुछ समस्याएँ

हमें आशा है कि उपर्युक्त विवेचन से ग्रामीण जीवन के बारे में नागार्जुन का आधारभूत दृष्टिकोण थोड़ा-बहुत स्पष्ट किया गया है। वह ज़मींदार, बड़े किसान और असामी-गरीब किसान इन दो वर्गों के प्रतिद्वन्द्व के जरिए से गाँव का चित्रण करता है, फिर औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन के द्वारा गाँव पर पहुँचाई गई हानियों पर भी ध्यान देता है। लेखक की जीवन यात्रा से भी इसमें संदेह नहीं है कि इस दृष्टिकोण का आधार मार्क्सवाद है।

यहाँ हम उस दृष्टिकोण की कुछ समस्याओं पर विचार करेंगे। लेखक के उपन्यास में जो श्रेणियाँ आती हैं वे ज़मींदार, छोटा ज़मींदार (यह श्रेणी "बलचनमा" में मिलती है वह न तो ज़मींदार है और न तो बड़े किसान) बड़े किसान और असामी-गरीब किसान हैं। हमें अंतिम श्रेणी अर्थात् असामी-गरीब किसान पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। क्या उन्हें गाँव में दलित वर्ग के रूप में एकत्र करना संभव है ? फणीश्वरनाथ रेणु कृत "मैला आँचल" के गाँव में प्रभावशाली ये तीन टोले आते हैं—राजपूत, यादव और कायस्थ। इनके अलावा ब्राह्मण, धानुक और संथाल (एक आदिम जाति) वगैरह अनेक जातियाँ मिलती हैं। अस्पताल की स्थापना के बारे में हरेक टोले के भिन्न-भिन्न विचार थे और सारा गाँव अनायास एकमत नहीं हो गया। प्रत्येक टोला अलग-अलग पार्टी का समर्थन करता

Scanned with CamScanner

था। इसी तरह गाँव में श्रेणियों की संरचना इतनी जटिल से जटिल है कि हम गाँव के साधारण लोगों को या असामी-गरीब किसानों को दलितवर्ग के रूप में एकत्र नहीं कर सकते।

लेखक ने "बाबा बटेसरनाथ", "बलचनमा" और "दुखमोचन" में हरिजनों और आदिम जातियों के बारे में बहुत ही कम लिखा। लेकिन वे गाँव की निम्नतम श्रेणियाँ हैं और उनके जीवन की दशा साधारण गरीब किसानों से और भी दयनीय है। जैसे हम पहले कह चुके हैं कि "मैला आँचल"-में दफ़ा 44 के बाद ज़मींदार, बड़े किसान असामी-गरीब किसान की ज़मीन ज़ब्त करने लगे। अवश्य असामियों और गरीब किसानों की ओर से प्रतिक्रिया तेज़ी से छिड़ गई। फिर भी जब ज़मींदार संथालों को खेत से बेदखल करने लगा तब गाँव वालों ने मिलकर उसकी सहायता की। संथालों और गाँव के अन्य लोगों के बीच भीषण लड़ाई हुई। बहुत-से संथालों की हत्या की गई और उनकी बस्ती लूटी गई। संथाल और अन्य गरीब किसान, दोनों गाँव के दलित वर्ग के लोग हैं। क्यों उन्होंने एक होकर ज़मींदार के प्रति मोरचा नहीं बाँधा ? इसमें शक नहीं कि दलित वर्ग के अन्दर भी तरह-तरह की श्रेणियाँ हैं।

इसी तरह नागार्जुन जिन साधारण गाँववालों के अंतर्गत बहुत-सी श्रेणियाँ, उनके आपस में प्रतिद्वन्द्व, अवांछनीय कलंक और कमज़ोरियों की उपेक्षा जान-बूझ कर करता है, उलटे उन्हें असामी-गरीब किसान या दलित वर्ग के रूप में एकत्र करता है इससे उनका राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि गाँव में दलित वर्ग को संगठित होकर शासक के प्रति संग्राम करना चाहिए, तथा किसी दिन साधारण जनता का स्वर्ण युग ज़रूर आएगा। उनके उपन्यास का उद्देश्य हिन्दुस्तान की सामाजिक कुप्रथाओं और कमज़ोरियों को दूर करके समाज की उन्नति के लिए योगदान देने में है। लेखक का यह दृष्टिकोण आदर करने योग्य है। परन्तु ठीक इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उसके उपन्यास आदर्शवादी हैं और राजनीतिक अर्थ में ज्यादा प्रचारक है। हमें वे कभी-कभी अवास्तविक भी लगते हैं।

नागार्जुन ने "बाबा बटेसरनाथ" में जाति व्यवस्था के संदर्भ में कम लिखा है। बेशक इसका मुख्य कारण लेखक का उपर्युक्त राजनीतिक दृष्टिकोण है जिसमें असामी गरीब किसान की वर्गीय एकता पर अधिक बल दिया जाता है। लेखक मार्क्सवादी हैं, पर क्या भारतीय ग्रामीण जीवन का चित्रण करते हुए भी जाति-पाँत पर महत्त्व नहीं देना मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्त के खिलाफ नहीं होगा ? क्योंकि मार्क्सवाद के अनुसार अनेक तत्व में से उनकी समानता निकालने के साथ-साथ हरेक तत्व के विशिष्ट पहलू या उसके भेद पर भी ध्यान देना चाहिए। गाँव के लोगों में हम असामी-गरीब किसान या दलित वर्ग नामक एक समान वर्ग देखते हैं। किन्तु उस समान वर्ग के अंतर्गत हरेक तत्वों पर ध्यान देना चाहिए। हम उसे श्रेणी मान सकते हैं। दलित वर्ग नामक समान वर्ग में हरेक तत्व अर्थात् श्रेणी का भेद होने का मुख्य कारण जाति-व्यवस्था में है। "मैला आँचल" के संथाल की घटना हम बिना जाति-पाँत पर विचार किये नहीं समझ सकते। अगर लेखक जाति-व्यवस्था के मामले में भी वर्णन करता तो "बाबा बटेसरनाथ" हमें और भी रोचक लगता।

यह सही बात है कि लेखक का दृष्टिकोण आदर करने के योग्य है, मगर वह अपने राजनीतिक दृष्टिकोण और विचारधारा पर इतना जोर देता है कि उसका चित्रण कहीं-कहीं अधिक आदर्शवादी और प्रचारक है।

Scanned with CamScanner

परिशिष्ट

1. गत वर्ष जापान में प्रकाशित भारतीय साहित्य एवं भारतीय भाषा सम्बन्धी निबन्धों की सूची।

(सन् 1980 से जून, 1981 तक)

1. "उत्तर भारत की लोककथाओं में ढाँचेदार कथाएँ" श्री तेइजि साकाता **'ताकुशोकु दाइगाकु रोनशू'** अंक 129 व 130, 1980
2. "**उत्तर भारत की लोककथाएँ**" (संकलन व अनुवाद) श्री तेइजि साकाता, हिराकवा शुप्पनशा, 1981
3. "दलित साहित्य" श्री हिदेआकि इशिदा "**महाराष्ट्र**" अंक 3, 1980
4. "**पंजाबी व्याकरण**" श्री तोमिओ मिज़ोकामि, एशिया अफ्रीकी व्याकरणमाला 13, 1981
5. "प्रेमचन्द जन्मशती के अवसर पर—प्रेमचन्द और उनके साहित्य" श्री कोकि नागा, **कोमेइ शिनबुन**, 1980
6. "**भारतीय लोककथाएँ**" (संकलन व अनुवाद) श्री कोकि नागा, फुकुइन शोतेन 1981
7. "**भारत की पौराणिक कथाएँ**" श्री कात्सुहिको कामिमुरा, तोक्यो शोसेकि, 1981
8. "भारत के नगरों के कुछ मन्दिरों व वेदियों पर एक विचार" श्री तेइजि साकाता, "**यू० पी०**" (यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन) 1980
9. "राजस्थानी लोककथाओं में चरित्र : एक अध्ययन" श्री कात्सुरो कोगा, "**सेकाइ कोशो बुनगे केंक्यू**", 1981
10. "**रवीन्द्रनाथ ठाकुर ग्रंथावली 8**" अनु० तात्सुओ मोरिमोतो आदि, दाइसान बुन् मेइशा 1981
11. "**टैगोर**" सं० काजुओ मोरिमोतो, कोदनशा, 1981
12. "**हिन्दुस्तानी मुहावरे**" श्री कोकि नागा, जियूकोकुमिनशा, 1980
13. "हिन्दी का वाक्य विन्यास—एक लोक कथा के उदाहरण पर आधारित प्रारम्भिक अध्ययन—" श्री तेइजि साकाता, "**गोगाकु केंक्यू**" 1980
14. "जापान में मध्यकालीन भक्ति साहित्य का अध्ययन" (अंग्रेजी में) श्री तेइजि साकाता, "**Early Hindi Devotional Literature in Current Reserch**" 1980.

Scanned with CamScanner

2. इस अंक के लेखक एवं लेखिकाएँ

1. **सुश्री तामाकि मात्सुओका**, मासिक पत्र "इन्दो त्सूशिन" सम्पादाकिका, 20-8, शिमो 2 च्योमे, किता-कु, तोक्यो, जापान
2. **सुश्री एदेरा कोदामा**, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय छात्रा, 15-42 निशि ओकामोतो 2 च्योमे, हिगाशि नादा-कु, कोबे-शि, ह्योगो-केन, जापान
3. **सुश्री मिकि कावामुरा**, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय छात्रा, 51-2 आगेशिओ-च्यो 3-च्योमे, मिनामि-कु, ओसाका-शि, ओसाका, जापान
4. **श्री तोमिओ मिज़ोकामि**, असिसटेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, 2-6 गोतेनयामा 2-च्योमे, ताकाराज़ुका-शि, ह्योगो-केन, जापान
5. **श्री शिगेओ आराकि**, जापान अफ्रो-एशिया लेखक संघ सदस्य, 249-7 मोमुरा, इनागिशि, तोक्यो, जापान
6. **श्री आकिरा ताकाहाशि**, दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र, कमरा नं० 106, जुबिली हाल, दिल्ली विश्व-विद्यालय, दिल्ली, भारत
7. **श्री यूइचिरो मिकि**, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय छात्र 157-1 गेइन, मिनो-शि, ओसाका, ज़ापान

3. विशेष सहयोगी

1. **श्री मासुओ त्सुजिमुरा**, (आवरण-पृष्ठ डिजाइन)
   4-5 हिगाशि कानामाचि 4 च्योमे, कात्सुशिका-कु, तोक्यो, जापान
2. **श्री कैलाशचन्द्र पाण्डे**, वाई-81 हौज खास, नई दिल्ली, भारत

Scanned with CamScanner

हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए

हमारे कुछ श्रेष्ठ प्रकाशन

★ ★ ★

साहित्यिक निबन्ध

● साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा	30·00
● विशिष्ट साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा	25·00
● अभिनव साहित्यिक निबन्ध	डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	18·00
● चिन्तन की वीथियाँ	वेदव्रत शर्मा	15·00

काव्यशास्त्र

● समीक्षा सिद्धान्त	डॉ० कृष्णदेव शर्मा	32·00
● भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	,,	16·50
● पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	,,	21·00
● पाश्चात्य समीक्षा : सिद्धान्त और वाद	सत्यदेव मिश्र	20·00

इतिहास

● हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	राजनाथ शर्मा	25·00
● हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० जयकिशनप्रसाद	32·00
● लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग	डा० श्रीराम शर्मा	18.00

भाषा-विज्ञान

● हिन्दी भाषा का विकासात्मक इतिहास	डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सैना	15·00
● हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	डॉ० गुणानन्द जुयाल	7.50
● हिन्दी भाषा का विकास एवं नागरी लिपि	डॉ० राजकिशोर सिंह	10·00

आलोचनात्मक

● हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	13.85
● हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	,, ,,	20.00
● हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार	,, ,,	18.00
● संत कबीर	डा० लक्ष्मीदत्त बी० पंडित	15.00
● सूरदास और उनका साहित्य	डा० देशराजसिंह भाटी	20.00
● बिहारी और उनका साहित्य	डा० देशराजसिंह भाटी	12.00
● तुलसी : साहित्य और साधना	डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	12.50

प्राचीन काव्य-ग्रन्थ

● कबीर ग्रन्थावली	डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र	30·00
● जायसी ग्रन्थावली	राजनाथ शर्मा	30·00
● भ्रमरगीत-सार	राजनाथ शर्मा	18·00

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (भारत)

VINOD PUSTAK MANDIR, AGRA (INDIA

Scanned with CamScanner